द्वितीय अध्यायः
वस्तुयोजना
द्वितीय अध्याय: 
वस्तुयोजना

1. नामकरण

संसार में समस्त व्यवहार नाम के द्वारा ही चलता है। यह सृष्टि नाम रुपात्मक है। प्रत्येक बुद्धिजीवी व्यक्ति, लेखक, कवि और वैज्ञानिक आदि अपनी वस्तु का नाम चुनने में बहुत सोच-विचार करते हैं और इत्यादि रखते हैं कि उनका नाम सार्थक हो। उनका सम्भावित एवं अभिलषित अभिप्राय उनके निर्धारित नाम से अभिव्यक्त हो सके। किसी भी वस्तु विशेष के निर्णय में उनका नाम गुण अथवा अवगुण बताने का साधन माना जाता है। निःसन्देह नाम का प्रभाव विद्वुत से भी अधिक समर्पक होता है। अतः किसी साहित्यिक रचना का नाम निर्धारित रूप से महत्वपूर्ण होता है। यदि ऐसा कहा जाये कि किसी रचना की सर्जन प्रक्रिया से अधिक सूत्र की अपेक्षा उसके नाम को सार्थकता प्रदान करने में होती है, तो इसमें कोई सन्देह नहीं होगा। नाम एक ऐसा सूत्र है जिसके द्वारा पाठक रचना के साथ आत्मीय का प्रथम सम्बन्ध स्थापित करता है। इसलिए रचना का सम्पूर्ण भाषावर्ग रहने के लिए नाम संशोधन सार्थक व समुचित होना नितांत आवश्यक है। नाम की आकर्षकता व सार्थकता तभी सम्भव है यदि वह किसी रचना के आध्यात्मिक अभिभावक का स्पष्टीकरण करे। कविराज विश्वनाथ की "नाम कार्य नाटकस्य गर्भिताद्यकाशाः"1 इस उदाहरण के अनुसार नाटक का नाम ऐसा होना चाहिए, जिससे नाटक में विधामान मूल उद्देश्य या अन्तर्निहित प्रकाश हो। अतः सथ्य है कि नाम ऐसा होना चाहिए जो संक्षिप्त, सारगर्भित, िोचक, भावव्यंजक व औचित्यपूर्ण हो।

संस्कृत नाटकों के नामकरण के सन्दर्भ में अनेक प्रथाएँ प्रचलित हैं। कुछ नाटकों के नाम किंतु सामान्य या विशेष घटनाओं पर आधारित होते हैं जैसे उरुमंग, दूरपक्षोत्तक आदि। कुछ नाटकों के नाम उनमें विधामान नायक व नायिकाओं के नाम पर रखे जाते हैं। आधारीविश्वनाथ के अनुसार नाटिका का नामकरण

1 साहित्यदर्पण, 6.142
नायिका के नाम पर रखना चाहिये— "नाटिकासद्दुटकादीनां नायिकाभिविरोधणम्" विश्वनाथ ने इस बात की पुढ़ि की है— नायिकानायकाख्यानात्तसंज्ञा प्रकरणाणान्तिनु। कविवार विश्वनाथ ने प्रस्तुत चन्द्रकला नाटिका में भी उक्त लक्षणों को आधार मानकर नाटिका का नामकरण नायिका के नाम से ही किया है। वस्तुतः अर्थात् कूल व तर्कसंगत नाम के श्रवणात्मक से ही सह्यदयों के हृदय प्रभावित व विकसित हो जाते हैं। इस दृष्टि से विश्वनाथ ने नाटिका का नामकरण किया है जो कि अत्यन्त सार्थक व यौक्तिक है। अतः चन्द्रकला नाटिका का नामकरण नायिकाधारित है।

2. कथावस्तु

नाद्यायायों ने रूपक भेद के अन्तर्गत नाटक की प्रधानता व उत्कृष्टता स्वीकार की है। सपाट शालाबी तक के रूपक साहित्य में नाटिका की रचना का कोई भी संकेत उपलब्ध नहीं होता है। नाटिका के वस्तु-विन्यास का जो आदर्श आलंकारिकों ने रूपककथाओं के लिए उपयोग किया उससे स्पष्ट जान पड़ता है कि इस प्रकार के नाद्यसाहित्य की रचना विशेषतः राजप्रासाद के प्राचीर के अन्तर्गत जीवनयापन करने वालों के मनोरंजन के लिए आरम्भ हुई। उच्चवर्ग की कथा के साथ राजा का गुपथ प्रेम-प्रयास नाटिका की वस्तु का मूल विषय माना गया है। आचार्य धर्मज्य ने रूपकों के तीन भेदक तत्त्व माने हैं— वस्तु, नेता और रस। संपूर्ण नाटकों के इन भेदक तत्त्वों में वस्तु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कथावस्तु का विन्यास नाद्य का मूल तत्त्व है। वस्तु को कथा, कथानक, इतिहास, कथावस्तु आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। कथा वस्तु के द्वारा ही रस का पता चलता है तथा पात्रों का चरित्र उभर कर स्वाभाविक रूप से सह्यदय के समक्ष प्रस्तुत होता है, जिसके आस्वादन से सह्यदय सामाजिकों का हृदय प्रभावित होता है।

1 साहित्यदर्पण, 6.143
2 वही, 6.142
3 दशरथक, 1.16: वस्तुनेतारसस्तेषाऽभेदकः।
आचार्य भर्ति, सागरनन्दी, शारदातन्य, शिंगमूपाल आदि आचार्य ने इतिवृत्त को नाट्य का शरीर कहा है। यदि नाट्य की आल्मा रस है तो कथावस्तु को नाट्य का शरीर कहना तर्कसंगत है। वस्तु–योजना, अभिनय, संगमंच पर प्रदर्शन की दृष्टि से तथा नाट्य धर्म की दृष्टि से कथावस्तु के अनेक भेद होते हैं।

वस्तुयोजना के आधार पर मुख्य रूप से आधिकारिक तथा प्रासंगिक भेद से कथावस्तु का प्रकार ही होती है। मुख्य कथा को आधिकारिक कथा कहते हैं जैसे– रामायण में राम की कथा आधिकारिक कथा है। प्रश्न कथावस्तु की सिद्धि में सहायक इतिवृत्त को प्रासंगिक कथावस्तु कहते हैं। आचार्य धनंजय ने प्रासंगिक कथावस्तु के पताका व प्रकारी दो भेद बतलाये हैं। पताका कथावस्तु मुख्य कथा के साथ दूर तक चलती है और प्रकारी स्थान विशेष पर मुख्य कथावस्तु की सहायक होती है।

इस प्रकार एक प्रकार का आधिकारिक तथा दो प्रकार के प्रासंगिक इतिवृत्त के पुनः तीन–तीन प्रकार बतलाये गये हैं— प्राक्षात, उत्पाद तथा मिश्र। इस प्रकार एक प्रकार का आधिकारिक तथा दो प्रकार के प्रासंगिक इतिवृत्त के पुनः तीन–तीन प्रकार बतलाये गये हैं— प्राक्षात, उत्पाद तथा मिश्र। इस प्रकार एक प्रकार का आधिकारिक तथा दो प्रकार के प्रासंगिक इतिवृत्त के पुनः तीन–तीन प्रकार बतलाये गये हैं— प्राक्षात, उत्पाद तथा मिश्र। इस प्रकार एक प्रकार का आधिकारिक तथा दो प्रकार के प्रासंगिक इतिवृत्त के पुनः तीन–तीन प्रकार बतलाये गये हैं— प्राक्षात, उत्पाद तथा मिश्र। इस प्रकार एक प्रकार का आधिकारिक तथा दो प्रकार के प्रासंगिक इतिवृत्त के पुनः तीन–तीन प्रकार बतलाये गये हैं— प्राक्षात, उत्पाद तथा मिश्र। इस प्रकार एक प्रकार का आधिकारिक तथा दो प्रकार के प्रासंगिक इतिवृत्त के पुनः तीन–तीन प्रकार बतलाये गये हैं— प्राक्षात, उत्पाद तथा मिश्र। इस प्रकार एक प्रकार का आधिकारिक तथा दो प्रकार के प्रासंगिक इतिवृत्त के पुनः तीन–तीन प्रकार बतलाये गये हैं— प्राक्षात, उत्पाद तथा मिश्र। इस प्रकार एक प्रकार का आधिकारिक तथा दो प्रकार के प्रासंगिक इतिवृत्त के पुनः तीन–तीन प्रकार बतलाये गये हैं— प्राक्षात, उत्पाद तथा मिश्र।

1 नाट्यशास्त्र, 19.1: "इतिवृत्त तु नाट्यस्य शरीरं परिकरितितम्।"  
2 नाट्यगृहारण रत्न कोश, पृष्ठ 7: "इतिवृत्त हि नाट्यस्य शरीरं परिकरितितम्।"  
3 भावप्रकाशन, पृष्ठ 201: वस्तु तत्स्यात् प्रबन्धस्य शरीरं कविकरितितम्।  
4 रसायनमुदासार, 3.6: इतिवृत्त प्रबन्धस्य शरीरम्।  
5 जनसूचक, 1.18: तत्स्यात् सुधित्युर्मण्डल प्रासंगिक विदुः।  
6 वही, 1.20: प्रासंगिक पराबलो ब्याह्यस्य प्रतिष्ठिताः।  
7 वही, 1.21: साङ्गुनां पताकायं प्रकारं च प्रदेशसाधकः।  
8 वही, 1.23
है कि एक ही भ्रम पूर्व आस्वादित कुंदलता और नूतन आँग्रजों का सस्त ग्रहण करता है। चन्द्रकला के अनुसार में आबाद राजा विनितावस्था में प्रस्तावना के पश्चात् उपस्थित होता है। सूक्ष्मार अभी इस कथन का समर्थन कर ही रहा है कि भ्रम रस का स्वाद ग्रहण कर रहा है उतने में महामन्त्री सुभधि वहाँ उपस्थित हो जाता है। महामन्त्री को सेनापति विक्रमादित्य ने एक कन्या रत्न भैंट में दी है। दिव्यार्वी से महामन्त्री को झात है कि उन्हें प्राप्त हुई राजकुमारी चन्द्रकला का जो भी पाणिग्रहण करेगा उसे माहलब्री प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होकर अभीष्ट वरदान देंगी। महामन्त्री सुभधि ने इस कन्या रत्न का नाम चन्द्रकला रखकर तथा इसे अपने स्वामी को उपलब्ध करवाने का निश्चय करके चन्द्रकला को अन्तःपुर में अपनी सम्बन्धिनी बलाकर महाराणी के संस्करण में रखता दिया। महामन्त्री को आशा है कि कालक्रमाःसार महाराज इस कन्याराम पर आसक्त हो ही जायेगे और इसका पाणिग्रहण करके माहलब्री से अभीष्ट वरदान प्राप्त कर सकेंगे। चन्द्रकला महाराणी के संस्करण में रहने लगती है। कुछ समय के बाद अन्तःपुर की सुनन्दना नाम की एक विश्वसन परिचारिका महामन्त्री को सूचना देती है कि महाराज चन्द्रकला के रूप लाभ योग्य पर आसक्त होकर उससे मिलने को अभी हैं। दोनों के परस्पर मिलन की एक योजना बनाई जाती है। निश्चय होता है कि प्रभावोधान में महाराज जब मनोविनोद के लिए पधारे तथा उपयुक्त अवसर देखकर सुनन्दना चन्द्रकला को महाराज के समक्ष उपस्थित कर दे। निदान सुनन्दना चन्द्रकला को महाराज की उपस्थिति में प्रभावोधान में ले जाती है। उस अनोखे चेहरे को देखकर महाराज अतिशय मन्त्रमुग्ध हो उठते हैं। चन्द्रकला को भी महाराज के सोनचेर को भर आँखें देखने का अवसर मिलता है और वह भी महाराज पर आसक्त हो जाती है और लज्जाशील चिंतक जाती है। ठीक उसी समय महाराणी की विश्वसन दासी रतिकला के वहाँ पर आ जाने से इस प्रणववापार में विख्यात आ जाता है। चन्द्रकला तुरंत अपनी रहेही सुनन्दना के साथ पास ही एक लता में छिप जाती है। दासी रतिकला महाराणी से निवेदन करती है कि महाराणी अन्तःपुर में आपका दर्शन चाहती है। महाराज चन्द्रकला

¹ चन्द्रकला, 1.6.
को फिर से मिलने का संकेत देते हैं और दासी के साथ अन्तःपुर की ओर चल पड़ते हैं।

दूसरे अंक में पूर्व निश्चय के अनुसार राजा चन्द्रकला से रात्रि-मिलन के लिये अपना सुन्दर वेष बनाकर प्रस्थान करने के लिए तैयार हो ही रहे हैं कि महारानी किसी उपाय से उन्हें रोक लेती है। महारानी उनसे कहती है कि आज केलिवन की वाटिका के समीप कुमुदिनी के विवाह का आयोजन किया गया है। अतः आपसे मेरा निश्चय है कि आप मेरे साथ वहाँ उपस्थित रहें। इसके उपरान्त उद्यान में एक बाघ के घुस आने की खबर फैल जाती है और भयभीत महारानी को अन्तःपुर में भेज दिया जाता है। इधर महाराज उस बाघ को मारने के लिए तीर धनुष लेकर तैयार हो जाते हैं। दीक्षा इसी समय वह बाघ महाराज के मित्र रसालक के रूप में बदल जाता है। रसालक माका देखकर महाराज को लेकर उन्हें चन्द्रकला से मिलाने के लिए प्रमदोधान के एक स्थान में ले जाता है।

प्रमदोधान में सधी सुनन्दा को लेकर चन्द्रकला बहुत समय पहले ही पहुँच गई थीं जो अब महाराज के न देखने से विरस सन्तप्त हो कर घबराने लगती है। दृष्टियों अंक में महाराज कुछ देर तक लता की ओट में शिपकर विशहकार चन्द्रकला को देखते हैं और फिर एक जधर वहाँ पहुँचकर उसे शैतं बंधने लगते हैं। इसी समय महारानी के आने की सुखना का संकेत रसालक महाराज को दे देता है। चन्द्रकला घरबारक सुनन्दा के साथ वहाँ से झटपट चली जाती है। घरबारक एवं समदिशाख में उसकी अंगूठी वहीं गिर जाती है। महाराज की दृष्टि उस अंगूठी पर पड़ती है और वे उसे उठाकर रसालक के पास सम्माल कर रखने के लिए दे देते हैं। इसके बाद ही महारानी वहाँ आ जाती है और बाघ को मारने के उपलब्ध में महाराज का अभिनंदन करती है और वहीं उपस्थित होकर रसालक को उपहार स्वरूप अपना हार दे देती है। विद्वंद्व प्रसन्न होकर हार को शीघ्रता से अपने गले में ढाल लेता है और दासी से बाहर चल लेता है। महारानी की अंगूठी देखते ही कुड़ हो उठती है और अन्तःपुर की ओर चल पड़ती है। महाराज विद्वंद को उसकी भूल मचाते हैं और वह महारानी के क्रोध को हटाने की प्रतिज्ञा करता है। इधर कुड़ महारानी चन्द्रकला
को सुनन्दना के घर छिपा देती है। इसका पता जब विद्वृत्तक को लग जाता है
तो वह सुनन्दना की सहायता से ही चन्द्रकला के साथ महाराज का प्रमोदण्ड के
मणिमण्डप में मिलन करवाने का उपाय करता है; किन्तु असावधानीवश वह
स्वयं इसका संकेत महारानी की विश्वसनीय परिचारिका माधविका को दे देता है
और यह सारा समाचार महारानी तक पहुँच जाता है। महाराज चन्द्रकला से
मिलने के लिए रात के समय प्रमोदण्ड में पहुँचते हैं और वहाँ चन्द्रकला को न
पाकर दुखी मन से विरह सत्तात होकर अर्जने प्रताप करने लगते हैं। उतने में
महाराज का मित्र रसालक सूचना देता है कि चन्द्रकला मणिमण्डप में आ चुकी
है। महाराज भी मणिमण्डप में पहुँचकर चन्द्रकला से मिलते हैं; परन्तु महाराज का
पीछा करती हुई महारानी भी अपनी सखियों से उसके मणिमण्डप तक पहुँचकर
छिप जाती है। क्रोधातीर्थक के कारण वह इसके प्रणालीप को सहन न करती
हुई आगे बढ़ जाती है। यह विद्वृत्क को सुनन्दना के साथ बाँधकर ले चलने और
चन्द्रकला को बन्दी बनाने की आज्ञा देती है जिसकी पूर्ण भी तुरंत हो जाती
है। महाराज सारी घटना को देखते रह जाते हैं और अन्त में खिलन होकर अर्जने
ही राजमहल की ओर बढ़ जाते हैं।

चतुर्धर अंक में जब चन्द्रकला के बन्दी बनाने जाने से महाराज विरहसन्ताप बने
रहते हैं तभी महारानी के पितृगृह पाण्ड्यदेश से महाराज का सन्देश लेकर दो
बन्दीगण दर्शनार्थ आते हैं। अभी पितृगृह से अनेक वर्षों बाद समाचार आने से
तत्सम्बस्या कौतुहल के अतिशय बढ़ जाने के कारण महारानी विद्वृत्क को प्रसन्न
करने के लिए उसे तुरंत कारागार से मुक्त करके पुरस्कृत करती है और उसी
के द्वारा महाराज से अभ्यर्थना भी करती है। महाराज को जब विद्वृत्क निवेदन
करता है तो वे महारानी की प्राध्यन्ता पर मणिमंडिर में विद्वृत्क के साथ पहुँच
जाते हैं और महारानी के साथ बन्दीगण से मिलते हैं। बन्दीगण महाराज को
समाचार देते हैं कि 'पाण्ड्यराज की छोटी पुत्री एक बार मनोरंजनाथ विहार के
लिए निकली तो रास्ता भूल जाने से अर्पण में भटक गई जिसे सवराज ने
अर्जने पाकर विश्ववासिनी देवी के बलिदान के लिए उपयुक्त लक्षणों वाली
कथा समझकर अपने महल में बन्दी बना दिया और कृष्ण चतुर्दशी की रात को
ज्यों हि बलि चढ़ाने के लिये देवी मन्दिर में ले जाकर अपनी तलवार उसने उठाई ही थी कि वहाँ विक्रमाध्यक्ष नामक सेनापति का एक सैनिक दर्शनार्थ आ गया और उसने निर्पराध कन्या की रक्षा करते हुए शबरराज को युद्ध में नार ढाला और राजकन्या को सेनापति विक्रमाध्यक्ष के संस्करण में रख दिया। सेनापति ने सारी स्थिति महामंत्री सुभद्रि को बताई और उस कन्या को उसके साथ भेज दिया था अतः वह कन्या इस समय आपको ही संस्करण में है। कन्या के सुलक्षणा और अतिशय सौभाग्यशाली होने से पाण्डयराज ने इसे अपने जामाता चित्ररथ देव को ही प्रदान करने का निर्देश कर रखा था अतः अब आप महाराणी वसन्तलेखा की सहमति से उसके साथ पाणिग्रहण कर लें। महाराज और महाराणी इस समाचार को सुनकर महामंत्री सुभद्रि को अपने दरबार में बुलाते हैं। महामंत्री बतलाते हैं कि विक्रमाध्यक्ष के द्वारा जब यह राजकन्या मेरे पास भेजी गई तभी मुझे एक दिव्यवाणी सुनाई दी थी कि जो इस कन्या से विवाह करेगा उसे स्वयं महालक्ष्मी अभीष्ट वर प्रदान करेगी। अतएव मैंने इसे अपनी सम्बन्धिनी बतलाकर महाराणी के ही संस्करण में रख दिया था।

सारी घटनाओं को सुनकर महाराणी चन्द्रकला को जब वहाँ बुलवाती है तो बन्दी उसे पहचान लेते हैं। निदान पाण्डयराज की द्वितीय कन्या चन्द्रकला से पिछले कठोर व्यवहार पर पश्चाताप प्रकट करती हुई महाराणी वसन्तलेखा स्वयं महाराज चित्ररथदेव का चन्द्रकला के साथ पाणिग्रहण सम्पन्न करवा देती है। ज्योंहि विवाह होता है वहाँ महालक्ष्मी प्रकट होकर सभी को दर्शन देकर अभीष्ट वरदान प्रदान करती है भरत-वाक्य के साथ नाटिका सम्पूर्ण होती है।

3. मूलस्वत

भारतीय नाट्य परम्परा के पर्यवेक्षण से मालूम होता है कि नाट्यासाध्यों ने प्रायः अपने-अपने नाटकों या महाकाव्यों का विषय आनंदन, परराणादि, काव्य, रामायण, महाभारत तथा उपलक्ष्य आदि ग्रन्थों से लिया है। मूलस्वत की दृष्टि से भारतीय

1 चन्द्रकला, चुरुक्क ३१: तथापीदमसु (भरतवाक्यम्)।
काव्यशास्त्र में दो प्रकार की कथावस्तु का वर्णन मिलता है एक प्रसिद्ध और दूसरी उत्पाद।

प्रसिद्ध कथावस्तु में पुराण और इतिहास का अन्तर्भाषय होता है एवं उत्पाद कथावस्तु में काल्पनिक सृष्टि होती है। नाटिका की कथावस्तु उत्पाद होती है। कल्पना पर आधारित ऐसे स्वरूप को प्रस्तुत करने का उद्देश्य विश्वास का ही रहा है और चन्द्रकला की कथा पूर्णत: कल्पित है अतः इसे किसी पौराणिक या प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा के आधार पर प्रथित नाटिका नहीं माना जा सकता है। कथानायक राजा विष्णुश्रेयस का आवाज अन्य किसी भी कृतियों में उपलब्ध नहीं है, अतः ऐसा प्रतीत होता है। कि यह नाटिका पूर्ण रूप से कवि कल्पित है और यदि हम चन्द्रकला नाटिका के नायक चिन्तत्रधेय को भानुदेव का प्रतीक मान ले तो यह भी इतिहास से स्पष्ट नहीं हो पायेगा कि महाराज भानुदेव चतुर्थ की महारानी राजुला देवी पाण्डवदेश की रहने वाली थी या फिर किसी अन्य प्रदेश की। इस प्रकार यह विचार मात्र एक दूरालंघ कल्पना ही होगी। अत: हम चन्द्रकला नाटिका की कथावस्तु को उत्पाद कथावस्तु समय नाटिका के स्थान पर इसके अन्य रूप को स्पष्ट करने में समर्थ नहीं हो पायेंगे, क्योंकि तब सेनापति के विक्रमाध्य महामंत्री सुभृदि के अभिधानों को भी प्रतीक मानकर उनका स्पष्टीकरण देना होगा।

सारांशः नाटिका को कविकल्पित कथावस्तु युक्त ही मानना तर्क संगत होगा जो कि निन्यानुसार सही है। चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला को मंत्री सुभृदि द्वारा अपनी सम्बन्धित बतलाकर महारानी वसन्त लेखा के संस्कार में अन्तःपुर में रखवाना, चिन्तत्रधेय का प्रमदोङ्गान में चन्द्रकला से गुप्त प्रणय व्यापार, तदुपराश महारानी वसन्त लेखा द्वारा प्रत्यक्षरूप से देख लिया जाना, यस्त लेखा के द्वारा कोशिक होकर विद्वृत्त और चन्द्रकला को बन्धक बनाकर कारागार में डाल देना। नायिका चन्द्रकला का महारानी वसन्त लेखा की सम्बन्धित होना तथा महारानी का प्रसन्न होकर चन्द्रकला का राजा चिन्तत्रधेय के साथ पाणिग्रहण कार्य सम्पन्न करवाना व महालक्ष्मी द्वारा साक्षात् प्रकट होकर वरदान प्रदान करना
4. मौलिक उद्देश्यांक

परिवर्तन संसार का निर्माण है और आवश्यकता अविष्कार की जननी है। साहित्य में नवीनता या मौलिकता की परम्परा इसी भाव को अभिव्यक्तित करती है। काव्यगत प्राचीनता से नई काव्यकृति प्रत्याविक्षित होती है और नई रचना आने वाली रचनाओं को प्रत्याविक्षित कर प्राचीन बन जाती है। नई साहित्य विख्यातियों के रूप में पुरानी साहित्य विख्यातियों का जन्म किया है। परिवर्तन विश्लेषण, सम्बन्धित व परिष्कृत रूप में होता है। इस प्रकार लोक सृष्टि में व्याप्त पुनर्जन्म का सिद्धान्त, साहित्य सृष्टि का सिद्धान्त एक व्यापक सिद्धांत है। वस्तुतः किसी तथ्य को रोचक, सारगमिति व परिष्कृति के अनुकूल बनाने के लिए रचनाकार द्वारा मूल रचना में जो परिवर्तन, परिष्कार व परिवर्तन किए जाते हैं, उन्हें कवि की मौलिक-उद्देश्य के अन्तर्गत रखा जाता है।

संस्कृत नाट्य साहित्य में लोक कथा की परम्परा प्राचीन समय से चली आ रही है। लोक कथाओं के संग्रहों में बृहत्कथा एक अक्षरस्थल है। इस खोज से साहित्य की विविध शैलियों के रूप में अनेक धाराएं प्रस्तुत हुई हैं। संस्कृत साहित्य के अनेक कवियों एवं विख्यातियों ने अपनी कृतियों में इनका आधार मानक न्यूनाधिक परिवर्तन व परिवर्तन करके अलग-अलग विख्यातियों में उपस्थित किया है। परस्तु विश्वनाथ विश्विध चन्द्रकला नाटिका में ऐसे कोई भी विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं होते हैं। अतः यह नाटिका पूर्णतः कवि कल्पना है।

चन्द्रकला नाटिका की कथावस्तु श्री हर्ष द्वारा रचित रचनावली, भास विश्विध स्वयंवस्तु आदि पूर्ववर्ती रचनाओं तथा उनके पर्याप्त सादृश्य लिये हैं और नाटिका के शास्त्रीय लक्षण और नाट्यशैलियों का मनोयोगपूर्वक प्रस्तुतीकरण करती है; किन्तु विश्वनाथ ने अपनी बुद्धि कौशलता से
इस कथानक में मौलिक उदभवनाम युक्त करने नाटकीय रोचकता का आदर्श दृष्टांत प्रस्तुत किया है। शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार नाटिका में लक्षणानुसार चार अंक है तथा महाराष्ट्री आदि स्त्री-पुरुषों की प्रमुखता और बाहुल्य है जो नाटकीय संविधान के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। विश्वनाथ ने प्रत्येक अंक में कथा को नवीन रूप देकर अपनी कल्पना के अनुसार कथा को नया मोड़ दिया है जो इसकी कल्पित शक्ति का उदाहरण है तथा नाटकीय कुशलता को दर्शाता है।

विश्वनाथ का यह तत्त्व गंभीर शास्त्रानुशीलन के कारण आलोचकारी आचार्यता की ओर अधिक था यही कारण है कि मौलिकता के लिए इसे जगह-जगह कठिनाई आती रही और ऐसा लगते लगा कि चतुर्दशक नाटिका में घटित घटनाएँ कहीं स्फोटास्वतंत्र के, कहीं स्फोटास्वतंत्र के प्रयोद्विक या फिर कालिदास के मालविकाभिनियत्र आदि नाटक के आस-पास मण्डल रही हैं।

सारांश: यही कहा जा सकता है कि इस नाटिका की कोई मूलकथा उपलब्ध तो नहीं होती है; किन्तु विश्वनाथ ने नाटकीय दृष्टि से इसे समुचित स्थान प्रदान किया है। नवीन मौलिक उदभवनामों द्वारा विश्वनाथ ने नाटिका को संगमंग की दृष्टि से भी उन सभी बुद्धि से भर दिया है जो कि एक कवि कल्पित नाटिका में होने चाहिए। विश्वनाथ ने अपनी कल्पित प्रतिमा से नाटिका को मनोरंजक एवं हृदयप्रभावी बनाने का प्रयास किया है जो कि पाठकों एवं दर्शकों को भावविभाव कर. देती है।

5. नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण

संस्कृत साहित्य में नाट्य साहित्य का अलंकारिक स्थान है भारतीय परम्परा के अनुसार नाट्य की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी गई है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में इस उत्पत्ति का बहुत ही रोचक प्रसंग प्रस्तुत किया गया है। नाट्यवेद दो उपनिषदों के संबंध में मुनियों से पूछे जाने पर भरतमुनि ने बताया कि नाट्यवेद का निर्माण ब्रह्मा ने किया था एक बार सततुग के समाप्त हो जाने पर महेन्द्र आदि ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि शास्त्र विपरीत आचरण में प्रवृत्त होने के कारण ईश्वर, क्रोध,
इतिहास के समय और अनेक प्रकार से पीड़ित हम लोग ऐसा क्रीड़नीयक बाहते हैं जो श्रेय और दृष्टि दोनों प्रकार का हो। उन्होंने ओर्फ्वेड से पाद (संवाद), सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्वेद से रसों को लेकर नाट्यवेद का निर्माण किया अत: नाट्य को पंचमवेद की संज्ञा भी दी गई है। नाट्क का प्रभाव किसी एक प्रकार की रूचि रखने वाले लोगों पर ही नहीं होता; अपितु यह सार्वजनिक मनोरंजन व सर्वजननिताय होने के कारण समाज के हर व्यक्ति के लिए ग्राह्य व उपादेय होता है। नाटक का विषय सीमित नहीं होता, इसमें तीनों लोकों के भावों का अनुकूलन होता है। 1 नाटकीय कथावस्तु को आकर्षक, रोचक, सन्तुलित व गतिशील बनाने के लिए नाटकशास्त्रियों ने कुछ मापदंडों का अविष्कार किया है, जिसमें अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं व संधियों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इनके प्रयोग से क्रमबद्धता, प्रवाह, रसात्मकता की अभिवृद्धि व नाटक की प्रयोजन सिद्धि होती है। नाट्य रचना की समस्त प्रक्रिया में प्रकृति, अवस्था एवं संधि को कारण, कार्य व फल के रूप में नियोजित किया जा सकता है। अर्थ प्रकृतियाँ कारण हैं, अवस्थाएँ कार्य विकास की विभिन्न दशाएँ हैं तथा संधियों में कारण व कार्य संयोग से अभिषेक फल सिद्धि की प्राप्ति होती है। कथावस्तु की अभिवृद्धि प्रकाश, स्वगत, अपवार्ति एवं आकाशाविक इन तत्त्वों पर आधारित होती है जो वृत्त गोपनीय न होकर अपने से अतिविकल दूसरों योग्य हो, उसे प्रकाश कहते हैं, जो दूसरों के लिए गोप्य, अपने भ्रम में ही रखने योग्य हो, उसे स्वगत कहते हैं। स्वगत रूप में कहीं जाने वाली भाव गोपनीय तो होती है; परन्तु उसकी गोपनीयता केवल अभिनय करने वाले पात्रों के ही दृष्टि से होती है, सामाजिक दृष्टि से उसकी गोपनीयता विलक्कुल नहीं होती। अभिनय करते समय 'स्वगत' भाव को भी उच्च स्तर से बोला जाता हैं जिससे प्रक्षक गण उसे स्पष्ट रूप से सुन सकें। पात्र तो मुख-मुड़ा द्वारा ऐसा अभिनय करता है कि मानो वह अपने मन में ही कह रहा है। जब उपर्युक्त व्यक्ति की ओर से घूमकर किसी एक पात्र से ही रहस्य की बात की जाती है तब वह 'अपवार्ति' होता है। इस 'अपवार्ति' को भी सामाजिक को सुनना

1 नाटकशास्त्र, 1.107
अवस्था अभिमृत्ता होता है, अन्यथा सामाजिक का सास्थ्य दूर जाता है। इसके अतिरिक्त ‘जनान्तिक’ शब्द नाट्यशास्त्र का पारिभाषिक शब्द है। किसी रहस्य की बात को कुछ व्यक्तियों से छिपाकर अन्य बहुसंख्यक व्यक्तियों पर प्रकट करने के लिए इस विशेष शैली का आश्रय लिया जाता है। रंगमंच पर प्रविष्ट पात्र जहाँ दूसरे पात्र के बिना ही आकाश की ओर मुख करके स्वयं प्रश्न और प्रस्तुत करें, वहाँ आकाशोत्तोष होती है।

इन उपयुक्त तत्त्वों के अतिरिक्त नाट्यारंभ से पूर्व नान्दी पाठ आवश्यक होता है। ‘नान्दी’ शब्द की परिभाषा “नान्दयाति स्तुत्या देवादेवीनान्दयात्तीति नान्दी” इस प्रकार से की गई है। नान्दी शब्द की उत्पत्ति “दुनिदी समुद्रिदी” धातु से पताचित्तात्त अच्छ प्रत्यय, उसके बाद स्थायी अण, अणपत होने से ‘टिप्पणियाणेश्वरनान्दयात्तकद्वयवघन्यन्यत्व’ सूत्र से शैर प्रत्यय होने से नान्दी शब्द की उत्पत्ति होती है। नान्दी’ नदी के द्वारा नाटकारम्य में देवद्विजनृपालिका की स्नात कही गई है जो कि नाटक की निर्धारणात्त संयम समापित हेतु जरूरी है। नाट्यदर्पण के अनुसार नान्दी की परिभाषा इस प्रकार से है– जिसमें अभिधे वस्तु के बीज का विन्यास शेष अथवा समासोवत अलंकारों द्वारा किया जाए उसे नान्दी कहते हैं।

२ पूर्वरंग का अंग होने के कारण नान्दी रचना का कार्य सूक्ष्मक व ही हुआ है। विश्वायू कविराज की प्रस्तुत नाटिका का आरंभ ‘नान्दी’ शब्द से ही हुआ है। जैसे कि– आकाश गंगा की वे लहरें आपको विजय प्रदान करे जिनमें कुमुदिनी दल से दूर हट जाने के कारण भौरों का समूह पार्वती के कटक्ष से उत्तपन्न होने वाली नीली किरणों–सा ऊपर उठ रहा है और नृत्य करने वाले भगवान शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रकला जिनमें एक शफ़री के समान उच्च स्थान पर स्थित होने के कारण यह गंगा शुष्क होकर भी यमुना के संगम को धारान करती–सी प्रतीत हो रही है। नान्दी के अन्त में सूक्ष्मक का प्रवेश

1 नाट्यदर्पण, 4.1: देव–भूम्–समा–भर्त–मुख्यां मंगलामिश्रां।
जित्वा सुभमुखे नान्दी, प्रदेश: रेखाशास्त्रां।।

2 साहित्यदर्पण, 6.24: आशीर्वचन संयुक्ता स्तुतिर्मयस्मात्तथ्यते।
देवशिवनृपालीं तमस्मानांत्तीति संभिता।।
होता है।

चन्द्रकला नाटिका में कार्य व्यापार की अवस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों तथा संस्थाओं का बड़ी कुशलता से वर्णन किया है, जिससे ज़रा ज़रा का विकसित तथा व्यवस्थित रूप उभर कर सामने आया है।

स्थापना

नादयास्त्रीय तत्त्वों में प्रस्तावना का स्थान सर्वप्रथम होता है। सूक्ष्म तथा साहित्यिक का कथावस्तु की ओर संकेत करने वाला वार्तालाप प्रस्तावना या सातृक कहलाता है। नादयास्त्रीय तत्त्वों में प्रस्तावना का सर्वप्रथम स्थान होता है यही तत्त्व नाटक के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है। विश्वनाथ ने चन्द्रकला नाटिका में नान्दी के पर्यंत सूक्ष्म महाकाव्य, प्रस्तावना अथवा स्थापना आदि परम्पराओं का निर्णय बहुत सूक्ष्म ढंग से किया है। प्रस्तावना के द्वारा ही नाटक की कथावस्तु, बीज, पत्राचार को प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्तावना में ही सूक्ष्म नाटक का सहदेव जनों के साथ अति संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करता है। यह प्रस्तावना पाठों के व्यासात्मक कथोपकथन आदि से विस्तार को प्राप्त होकर फल निर्धारण की अवस्था का प्राप्त होता है। प्रस्तावना को ही स्थापना कहते हैं।

स्थापना के समाप्त होते ही कथावस्तु आरम्भ हो जाती है।

प्रस्तुत नाटिका ‘चन्द्रकला’ नाटकीय दृष्टि से अत्यंत सुगमित है। इसमें नान्दी पाठ के पर्यंत सूक्ष्म दृष्टि का प्रयोग होता है। वह नाटिका का आरम्भ महाराजाधिराज त्रिकुलिकेन्द्र भूमण्डलेन्द्र निष्कासक भानुदेव के रूप में करता है।

1 चन्द्रकला, 1.1.
2 साहित्य दर्पण, 6.31
3 नादयास्त्री, 22.35
इसके दायरे नदी बसन्त ऋतु का गीत गाती है। तत्परतात सुंदरकार कहता है कि किसी समय वस्तु का धिराकाल तक उपयोग करने पर भी अपने समुख किसी अन्य नवीन वस्तु को देखने पर मन उसी ओर भागने लगता है। रस्तापन समाप्त होते ही कथावस्तु के विकास के लिए कारण कार्य व फल रूप में उत्पन्न होने वाली अर्थप्रकृतियों, अवस्थाओं और संधियों का प्रयोग किया गया है।

अर्थप्रकृतियों

अर्थ प्रकृतियों का अभिप्रय: है सिद्धि के साधक उपाय अर्थात् प्रयोजन की सिद्धि के लिए। इसलिए नाट्ययान्त्रण में इन अर्थ प्रकृतियों को उपाय शब्द से अभिप्रय किया गया है। विश्वनाथ ने भी अर्थ प्रकृति आदि का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि साधारणतः को दृष्टि में रखकर ही कार्यवाच्य, अर्थप्रकृति, संधि तथा संबंधों का संयोजन करना चाहिये, मात्र निर्देशपूर्व पर लिए नहीं। नाटक में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरण के पाँच अर्थ प्रकृतियाँ होती हैं। ये अर्थ प्रकृतियाँ ही आधिकारिक कथावस्तु में सहायक होती हैं। बीज, बिन्दु और कार्य इन तीन अर्थ प्रकृतियों का प्रत्येक रूप में होना अविलम्बित होता है जबकि पताका एवं प्रकरण की स्थिति सभी रूपकों में नहीं पाई जाती है। प्रस्तुत नाटिका चन्द्रकला में निम्नलिखित अर्थ प्रकृतियों का प्रयोग हुआ है—

1. चन्द्रकला, 1.5
2. दर्रूपक, 1.18 : अर्थप्रकृतयः प्रयोजन सिद्धिहेतुः।
3. नाट्ययान्त्र, 1.28 : बीजं पताका प्रकरण बिन्दुः कार्य यथार्थदिः।
   फलस्य हेतुः पंचः चेतनानमकः।
4. साहित्ययान्त्र, 6.120 : रसायनकिष्पयक्षेत्रामुडा सन्तोषवात्।
   न तु केवलाशास्त्रा स्थिति समाप्देनत्वः।
5. वही, 6.64 : बीजं बिन्दुः पताका प्रकरण कार्यमेव च।
   अर्थप्रकृतयः पंच ज्ञात्या योज्या यथार्थदिः।
बीज

रूपक के आरम्भ में सूक्ष्म रूप से कहा गया और आगे चलकर अनेक प्रकार से विस्तार को पल्लवित एवं पुष्टित करने वाले इतिवृत के फल का निमित्त बीज कहलाता है। यह बीजवद्य होता है जैसे वृक्ष का बीज पल्लवित होकर अनेक शाखाओं का रूप लेकर पूर्णबृक्ष बनता है। बीज आरम्भ में अत्यन्त अल्परूप से उपक्रमित रहता है तथा उत्तरदायक विकसित होता जाता है। विश्वनाथ ने भी चन्द्रकला नाटिका में बीज का वर्णन किया है। चन्द्रकला नाटिका की प्रस्तावना में नटी के मुख से बसन्त्रूपुंत के गीत के माध्यम से स्वल्परूप में बीज को उपस्थापित कर दिया गया है। आज यह भौत विश्राम तक उपभोग की गई एवं इत्य कुण्डलता को बिना छोड़े हुए नवनयन से सुवासित इस आधारतली का चुम्बन कर रहा है। किसी समीक्ष वस्तु का विश्राम तक उपभोग करते रहने पर भी अपने सामने किसी अन्यवस्तु को देखने पर मन उसी ओर भागने लगता है।

इस प्रकार नटी के गीत की प्रशंसा में कहा गया सुप्रभात का यह कथन चन्द्रकला नाटिका के प्रयोजन “चित्रस्थितेव द्वारा चन्द्रकला की प्राप्ति” की ओर सूक्ष्म संकेत कर रहा है। तत्काले च सुनविभ।इस कथा का जो भूमिपति पाणिग्रहण करेगा तभी लक्ष्य स्वयं प्रकट होगी और अभीष्ट वर्तमान प्रदान

1 दर्शन, 1.16 :
2 दर्शन, 1.16 :
3 साहित्यदर्श, 6.65 :
4 चन्द्रकला, 1.4 :
5 वही, 1.5 :
करेगी। इस कथन में सुपुद्ध का उद्धोग ही बीज है जो कि आगे चलकर पत्तित और पुषित हुआ है।

बिन्दु

नाटकीय इतिवृत्त में आवश्यक कार्यजन्य व्यवहार के निवारणार्थ नाटकादिगत अनुसंधान की योजना बिन्दु है। यह निम्नलिखित बनकर कथा को आगे बढ़ाता है अथवा कथा के अर्थ को जोड़ता है। दूसरे शब्दों में अवात ग्रन्थजन की समाधान पर दूसरी हुई कथा को जोड़ने वाले भाग को बिन्दु कहते हैं। रूपक की कथावस्तु का एक मुख्यफल होता है जो कि महाकाव्य कहलाता है; किन्तु मध्य में कथाओं के अनेक ग्रन्थजन होते हैं जो अवात कार्य कहलाते हैं। यह बिन्दु भी बीज के समान समस्त नाटक में आदि से अन्त तक निर्धारण रहता है। जल में फैले तैलबिन्दु के समान इतिवृत्त में फैल जाने के कारण ही इसे बिन्दु कहते हैं।

चन्द्रकला नाटिका में भी कवि ने बिन्दु का वर्णन किया है। प्रथम अंक में महाराज चित्रश्रद्धेय जब महारानी से मिलने अन्तःपुर में जा रहे थे तब चन्द्रकला अध्यात्म उनकी दृष्टि में वही आ जाती है जो कि एक अवात कार्य है; परन्तु चित्रश्रद्धेय द्वारा एकटक देखे जाने पर महारानी की सेविकाओं ने वहाँ से चन्द्रकला को हटा दिया जिससे कथानक में विश्राम्कलता उत्पन्न हो जाती है। चन्द्रकला के प्रति महाराज के हृदय में जो औतुकुक्त था वह अनुराग का प्रतीक है।

1 चन्द्रकला, 1.6: यस्तंभूमिमतिमूमि पापिनमिस्या ग्रहीष्ट्यति।
कवि: स्वयमुपान्य वरससि प्रदायस्यति।

2 साहित्यदर्शन, 6.66: अवातसारधििविचित्रे बिन्दुरवछदकरणम्।

3 दरशानक, 1.17: अवातसार विचित्रन्विदुरवछदकरणम्।

4 नाट्यदर्शन, 1.32: हेतोश्चदेव स्नासात् बहुः बिन्दुरकलात।

5 दरशानक, 1.17: बिन्दुजश्च तैलबिन्दुवस्त्रसारवाल।

6 चन्द्रकला, 1.7: सा दृष्टिप्रवृत्तार्जमयी दृष्टिसदप्तानं
पुरात्मोमन्नत्रयन्त्रजनिता कृष्टिरनगचेतस।
सा भूवलितरनंगशार्दूः धनुषोपक्षिस्तथास्तानं
लोकस्माति पूर गुरुसामी सृष्टि: प्रशा वेधस।।
यहाँ पर प्रधान कथा को शृंखलाबंध करने में सहायक सिद्ध हो रही है। अतः यहाँ बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है। यह कथन कथा को आगे की ओर गतिशील करता है। किसी भी नाटक में अनेक बार बिन्दु का प्रयोग हो सकता है।

प्रकरी

प्रकरी वह अर्थप्रकृति है जिसे अल्पदेश व्यापक प्रासंगिक इतिवृत के रूप में देखा जाता है। प्रासंगिक कथावस्तु के छोटे छोटे वृत्तों को प्रकरी कहते हैं। इसकी कथा एकदेशीय होती है जो कि प्रधान इतिवृत के साथ थोड़ी दूर चलती है। विश्वनाथ के मतानुसार भी प्रकरी का नायक अपने किसी प्रयोजन की सिद्धि की अपेक्षा न करके निर्पेक्षात्मा से प्रधान नायक का सहायक होता है। जैसे रामचरित में जदाभु। वैसे ही समीक्षा चन्द्रकला नाटिका के तृतीय अंक में महारानी द्वारा चन्द्रकला के बन्दी बनाये जाने पर राजा को अपने प्रयोजन की सिद्धि में सन्देह होने लगता है। ठीक उसी समय चतुर्थ अंक में विदूषक द्वारा महारानी के पिता के यहाँ से बन्दीगण का आगमन होता है। बन्दीगण विदेश करके पाण्ड्य नरेश का समाचार राजा तथा महारानी को सुनाते हैं। बन्दीगण द्वारा दिये गये पाण्ड्य नरेश की पुत्री के अपहरण का समाचार यहाँ प्रकरी की योजना की गई है। ये बन्दीगण निर्वाचित भाव से अमीर की सिद्धि में सहायक होते हैं। यहाँ राजकुमारी के अपहरण की कथा थोड़ी देर के लिए आती है जो कथा की गतिशीलता तथा प्रयोजन की सिद्धि में अत्यन्त सहायक है।

कार्य

कार्य नामक अर्थप्रकृति नाटक में विद्यमान होती है। आचार्य भरत के अनुसार जो आधिकारिक वस्तु प्राप्त द्वारा प्रयुक्त होती है उसके लिए किया गया समारम्भ

1 साहित्यदर्पण, 6.68: प्रासंगिक प्रदेशस्थ चरित प्रकरीमाता।
2 दाससूक, 1.13: प्रकरी च प्रदेशमाक।
3 साहित्यदर्पण, 6.69: प्रकरीमात्रस्त स्थानान्तरस्तिकाय विकारं।
   अपेक्षित तु यसस्थमार्मोऽविनिवर्तन।।
4 चन्द्रकला, चतुर्थक: पृष्ठ, 71: राजा— बन्दिनो, कुशांल पाण्ड्येष्वरस्य।
कार्य कहलाता है। आचार्य धनंजय कार्य तथा फल में अभ्यं नामते हैं उनके अनुसार कार्य अर्थात फल धर्म, अर्थ तथा काम रूप से त्रिवर्ग हैं। किन्तु पंचम अर्थप्रकृति के रूप में जिस कार्य का समावेश किया गया है वह फल नहीं फल प्राप्ति का उपाय है। दूसरी ओर कार्य वह अर्थप्रकृति है जिसके उदेश्य से नायक का कृत्यानुष्ठान समाप्त माना जाता है। यही नाटक का प्रभाव साध्य होता है जैसे कि "चन्द्रकला नाटिका में" चित्रसंधेर का चन्द्रकला से परिणय तथा लक्ष्मी से अभिषेक वरदान प्राप्ति को फल प्राप्ति की दृष्टि से कार्य नामक अर्थप्रकृति का विषय माना जा सकता है।

कार्यावस्थायें

संस्कृत नाटक का कथानक साधारणतया जब पूर्ण अवस्था को प्राप्त करता है तो उसमें विकास की पांच अवस्थायें दिखाई देती हैं। इसका मुख्य प्रयोजन फल होता है। भारतीय नाटयशास्त्र में फल प्राप्ति की इच्छा वाले नायकादि के द्वारा आरम्भ किये गए कार्य की पांच अवस्थायें होती हैं। आरम्भ, प्रयाल, प्राप्तायाशा, नियतायि और फलागम। अर्थप्रकृतियों, तथा कार्यावस्थायों दोनों ही फलप्राप्ति में सहायक होती हैं। अर्थप्रकृति इतिवृत्त का उपादान कारण है जबकि कार्यावस्था नायक की मनोदशा से सम्बन्ध है। विश्वनाथ कविराज ने चन्द्रकला नाटिका में निम्न कार्यावस्थाओं का प्रयोग किया है--

1 नाटयशास्त्र, 19.26: "यदाधिकारिं वस्तु सम्प्रम प्राहोः प्रयुज्यते। तद्भवं य समारम्भस्तकार्य परिस्थितिलम्।”
2 दशरूपक, 1.16: कार्य त्रिवर्गमस्तकुलमनामनाप्रकुलविधि च।
3 साहित्यदर्पण, 6.69: अपेक्षां तु पारः दे तत्कार्यमिति संभवम्।
4 वही, 6.70: अवस्था पांच कार्यावस्था प्रारम्भस्य फलार्थिभि।

दशरूपक, 1.19. आरम्भमयल प्राप्तायाशा नियतायि फलागम।

नाटयदर्पण, 1.34.
आरम्भ

यह प्रारंभ कार्यवास्था है इसमें फल प्राप्ति के लिए उत्कृष्ट रहती है। अन्यथा फलागम की उत्तमता मात्र ही आरम्भ कहलाता है। प्रत्युक्त फलागम की उत्तमता मात्र ही आरम्भ कहलाता है।² चन्द्रकला नाटिका में राजा चित्रस्थदेव के "चन्द्रकला समागम" रूप के कार्य का आरम्भ मंत्री सुभद्रिके द्वारा दिखाया गया है। यहाँ फल प्राप्ति के लिए उत्तमता है। सुभद्रा का यह कथन है कि "इस दिव्य कन्या से विवाह करने वाले व्यक्ति को लक्ष्मी स्वयं प्रकट होकर वरदान देगी।³ इस दिव्यवाणी को सुनकर अपने स्वामी को अनुसरण हेतु इस कन्या का विवाह महाराज के साथ करने के लिए उत्तम मंत्री सुभद्रा के द्वारा चन्द्रकला को महारानी के अंक:पुर में अपनी सम्भविनी बनाकर रखवाना कार्य का आरम्भ है, व्यंजन ऐसा करने पर चन्द्रकला अनायास ही महाराज की दृष्टि में पड़ जाएगी तो वे स्वयं ही इससे विवाह कर लेंगे। चन्द्रकला में चित्रस्थदेव के कार्य की सिद्धि मंत्री सुभद्रा पर आशंकित है।

प्रयुक्त

प्रयुक्त यह कार्यवास्था है जिसमें फलप्राप्ति के निमित्त योजनाबद्ध तीव्र व्यापार या चेस्टा हो।⁴ फल की प्राप्ति न होने पर उसकी प्राप्ति के लिए वे गूढ़क उद्देश्य करना ही प्रयुक्त कहलाता है।⁵ इसमें मुख्यतः फल की प्राप्ति के लिए तत्पत्रता बनी रहती है जिससे यह निश्चय हो जाता है कि कार्य प्रयुक्त के बिना सिद्ध नहीं होगा। चन्द्रकला नाटिका के प्रथम अंक में चन्द्रकला के प्रथम दर्शन से ही अनुरक्त राजा चित्रस्थदेव से मिलने के लिए सुनन्दा चन्द्रकला को फूल चुनने के बहाने उपवन में ले जाती है यथा: राजा की उपजी के स्पष्ट है कि 'सखे

¹ सहित्यदर्पण, 6.71: भवेदरम्भ औरतुवलं यमुन्यालक सिद्धये।
² दशरथ्रूपक, 1.29: औरतुवलमाराम्भ: फललाभन भूपसे।
³ चन्द्रकला, 1.6 तथा प्रसादनाव भाग पृष्ठ 6
⁴ सहित्यदर्पण, 6.71: प्रयलस्तु फलवापीत्रयाप्तिचित्ररसिण्तः।
⁵ दशरथ्रूपक, 1.20: प्रयलस्तु तदरापो व्यापारोपि प्रतिचित्ररसिण्तः।
अन्यायाबद्ध सत्याय सुनन्दनया कुहुमावच्यवाजादिदानिमेव लीलोपवंभनानीयते।।
यहाँ सुनन्दनया द्वारा चन्द्रकला को उपवन में ले जाना, चन्द्रकला को चित्रश्लेष्टेव
से मिलाने का उपाय होने के कारण 'प्रयत्न' नामक कार्यावस्था है।

प्राप्त्याशा

उपाय के होने पर विचन की आशंका होने से जो फल प्राप्ति की सम्भावना मात्र
होती है; किन्तु फल प्राप्ति के विषय में कोई निर्वचन नहीं हो पाता, वहाँ
प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था होती है।।

नाटिका के तीसरे अंक में महारानी चन्द्रकला तथा राजा के प्रणाम व्यापार से रूप्त प्रकरण
होकर चन्द्रकला को सुनन्दनया के घर में
छिंदवा देती है। इस प्रकार चन्द्रकला तथा महाराज के मिलन में होने वाली भारी
रक्षात्मक कम होने पर भी महारानी वसन्तलेखा रूपी विचन की आशंका संकेतित
मणिमण्डप में सदैव बनी रहती है जो कि विद्वेशक के कथन से स्पष्ट होती है कि
'यदि वहाँ अचानक मेघमण्डली के समान महारानी आकर विचन न बने तो तुम्हें
चन्द्रकला अवश्य प्राप्त हो सकती है।'।

यहाँ पर चन्द्रकला की सुनन्दनया के साथ
मणिमण्डप में उपस्थित वसन्तलेखा रूपी विचन की आशंका बने रहने से
चन्द्रकला मिलनरूपी फल की प्राप्ति निर्मित नहीं दिखाई देती है। अतः यहाँ पर
प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था है।

नियतापि

विचन बाधा की निवृति हो जाने पर जब फल प्राप्ति की सम्भावना निर्मित हो
जाती है तो उसे नियतापि नामक कार्यावस्था कहते हैं।।

1 चन्द्रकला, प्रथमांक, पृष्ठ 12
2 साहित्यदर्पण, 6.72: उपायागायशकाम्याल प्राप्त्याशा प्राप्ति संभवः।

शशूर्व, 1.20
3 नाद्यदर्पण, 1.35: फलसम्भावना किचिंत् प्राप्त्याशा हेतुमात्रः।
4 चन्द्रकला, तीतितांक पृष्ठ 57
5 साहित्यदर्पण, 6.72: अपायाभावं: प्राप्तिनिर्मितातीति निशिचतः; शशूर्व, 1.21
सफल हो जाने से कार्य की प्राप्ति का निर्णय है।¹ इस कार्यवास्था में उत्पन्न विघ्न-वाह्याओं के हट जाने पर फल प्राप्ति का निर्णय हो जाता है। चन्द्रकला नाटिका के तृतीय संक में महाराणी बसंतलेखा मणिमण्डप में पहुंचकर भारी क्रोध के कारण चन्द्रकला तथा राजा के प्रणयालाप को सहन नहीं करती है। वह विद्रोहक को सुनन्दना के साथ बौंधकर ले चलने और चन्द्रकला को बन्दी बनाने की आज्ञा देती है तब राजा खिन्न मन से कहते हैं कि मेरे इस प्रकार के दूसरी प्रेयसी के साथ मिलन को अपने सामने देखने वाली महाराणी के बड़े हुए सान को छुड़वाना कैसे सम्भव हो सकता है। मेरे कारण ही मित्र के साथ प्रियतम को बौंधकर ले जाया गया। अब मेरी ऐसी स्थिति में विनाश स्वयं अचानक उपस्थित हो, तो मैं क्या करूँ?² यहाँ पर देवी को प्रसन्न करने के अति प्रकार का और कोई उपाय स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। अतः चतुर्थ अंक में पाण्ड्यदेश से आये बन्दीगण से जो महाराणी की प्रसन्नता है उसके द्वारा देवी रूपी विघ्न का नियांत्रण होने से एवं निश्चित फल प्राप्ति की पूर्ति होने से नियतता प्राप्त कार्यवास्था है।

फलागम

फलागम वह कार्यवास्था है जो रूपक के अन्त में समूचे फल लाभ की प्राप्ति करवाता है।³ इसमें नायक को प्रत्यक्ष फल की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् फल की प्राप्ति में कोई संदेह नहीं रहता है। दूसरे शब्दों में पूर्णसूच से फल की प्राप्ति फलागम है।⁴ चन्द्रकला नाटिका के चतुर्थ अंक में काम की सिद्धि का हेतु चन्द्रकला समागम रूपी फल है जो अर्थसिद्धि के अर्थ साक्षात् लक्ष्मी के वरदान से युक्त है, अतः दोनों की पूर्वत: प्राप्ति ही फलागम है जो कि राजा के इस कथन से स्पष्ट है कि भगवती, इस प्रकार कहने से महाराणी प्रसन्न हो गई प्राणों से

¹ साहित्यपरम्परा, 1.41 नियतताप्राप्तियम् साक्षात् कार्यनिर्णय:।
² चन्द्रकला, 3.20
³ साहित्यपरम्परा, 6.73: सावर्त्त: फलयोगः: स्वाधः: समग्रफलिदयः।
⁴ दशरूपकः प्रमाणः पृष्ठ: 16
समग्रफलसंपत्ति: फलयोगोऽयोऽदितः।
प्रिय भार्या की प्राणित हुई और आप ने भवन में उपस्थित हो गई तो अब इससे अधिक प्रिय क्या होगा। यहाँ पर चन्द्रकला के साथ परिणय तथा लक्ष्मी का साकात वरदान दोनों प्रयोग एक साथ सिद्ध हो जाने से फलागम नामक कार्यक्षेत्र विद्यमान है।

पंचसन्धियों

संधि शब्द सम्पूर्ण पूर्वक या धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है सन्धान करना। मुख्य या अधिकारिक कथावस्तु के भिन्न-भिन्न स्तरों तथा भागों का सन्धान करना या उन्हें एक सूचन में जोड़ना संधि कहलाता है। किसी एक प्रयोजन से परस्पर सम्बन्ध व्याख्या का जब किसी दूसरे प्रयोजन से सम्बन्ध किया जाए तो वह सम्बन्ध संधि कहलाता है। अर्थ प्रकृतियों और कार्यक्षेत्रों के संबंध से संधि का निर्माण होता है। अर्थप्रकृति पंचक रूप इतिवृत्त भेद के साथ पांच कार्यक्षेत्रों की क्रमिक योजना के कारण नाटकीय इतिवृत्त के जो भाग होते हैं, वे ही पंचसन्धियों कहलाती हैं। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्धारण नामक भेदों से पांच प्रकार की होती हैं। विश्वनाथ ने चन्द्रकला नाटिका में निम्न संधियों का प्रयोग किया है—

मुख संधि

नायक की आरंभिक अवस्था जिसके साथ सम्बन्ध रहती है तथा जो विभिन्न प्रकार के रसभावों की योजना से जुड़ी रहती है वह मुख संधि कहलाती है।

1 चन्द्रकला, 4.14: देवीमेवंगमिता प्रसादामसादिता प्राणासमाप्रियायमे।
2 साहित्यदर्पण, 6.74-75।
3 दशरथक, 1.23: अन्तरराकार्थसंबंधः संधिकान्यपयोतित।
4 वही, 1.22: अर्थप्रकृतः पंचांगावस्थासमन्विता।।
5 वही, प्रथम: प्रकाशः पूर्ण-17: मुखप्रतिमुखेन्द्र: सावमशापस्त्रूहति:।।
6 साहित्यदर्पण, 6.76: यज्ञ बीजं समुद्रपरिवर्तिनायं सम्भवा। प्रारम्भमे समायुक्तः तमुखं परिक्रियतितम्।।
जहाँ बीजों की उत्पत्ति होती है और जो अनेक प्रकार के प्रयोजन तथा रस की निष्पत्ति का निमित होती है वह मुखसंधि है।ऍ चन्द्रकला नाटिका का प्रथम अंक मुख संधि का उदाहरण है। इसमें अमाल्य (सुबुद्धि) के आरम्भ नामक व्यापार के विषय भूत नायक द्वारा चन्द्रकला को देखी जाने तथा चित्रण द्वारा लक्ष्मी का वरदान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले ये दोनों ही दृश्य मुख संधि के उदाहरण हैं।

प्रतिमुख

मुख संधि में निर्दिष्ट बीज का कुछ लक्ष्य रूप में तथा कुछ अलक्ष्य रूप में प्रकट होना ही प्रतिमुख संधि है। ¹ बिन्दु नामक अर्थप्रकृति और प्रयत्न कार्यक्रम के योग में इस संधि के तरह अदरक होते हैं।² नायक चित्ररचनात्मक और नायिका चन्द्रकला के मिलन का फल हेतु औपचार्य या अनुराग रूपी बीज है उसका नाटिका के प्रथम अंक में उपक्रम किया गया है। जो कि चन्द्रकला के प्रथम अंक में ही विद्वान तथा सुन्दरता को ज्ञात हो गया है। अतः कुछ घटनाक्रम लक्ष्य है तथा अनुराग रूपी बीज कुछ लक्ष्य एवं कुछ अलक्ष्य होने से यहाँ पर प्रतिमुख संधि है।³

गर्भसंधि

जहाँ बीज के नश्त हो जाने पर जब उसका अवधे बार-बार किया जाये वहाँ गर्भ संधि होती है। इसमें बीज के हुस और विकास की चिन्ता साथ-साथ बनी रहती है।⁴ प्रतिमुख संधि में जो बीज कुछ लक्ष्य रूप में तथा कुछ अलक्ष्य रूप

¹ दर्शनप्रभ, 1.24: मुख बीज समुच्चयपरिवर्तनार्थसम्बन्ध।
² साहित्यदर्पण, 6.77: फल प्रशानोपायस्य मुखसंधि निवेशिन।
³ दशरथप्रभ, 1.30: लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भवस्त्रयत्र प्रतिमुखं चतुर्भुज।
⁴ चन्द्रकला, पृष्ठ 5
⁵ साहित्यदर्पण, 6.78: अलक्ष्यालक्ष्यस्य नामधर्मसारस्य किंचि।
में प्रकट होता है, उसका विशेष प्रकार से प्रकट होना, विष्णु के साथ प्रकट होना, फिर नष्ट हो जाना, फिर प्राप्त होना तथा फिर नष्ट होना और फिर उसका ही बार-बार अन्वेषण किया जाना ही गर्भ सचित कहलाता है। इसमें फल प्राप्ति की आशा का निश्चय नहीं होता है। कहीं पर इसमें पताका नामक अर्थप्रकृति होती है तो कहीं पर नहीं भी होती; परन्तु प्राप्त्यावस्था नामक कार्यावस्था सदैव होती है। चन्द्रकलानाटिका में गर्भसचित की योजना तृतीय अंक में है जहाँ विद्वृत्तक के वचनों द्वारा चन्द्रकला की प्राप्ति की आशा होती है जिसमें महारानी वस्तिलेखा के रूप में विष्णु कहा गया है और सुनन्दना के घर में देवी द्वारा छिपायी गई चन्द्रकला का गुप्त रूप से अभिसरण उपाय कहा गया है; लेकिन वस्तिलेखा की उपाधिकारी और चन्द्रकला सुनन्दना व विद्वृत्तक को बौधकर ले जाने से उसमें विष्णु पड़ा है, फिर उस विष्णु को दूर करने का उपाय देवी वस्तिलेखा की प्रसन्नता को खोजा जाता है। गर्भ सचित तृतीय अंक के आरम्भ होने से लेकर वस्तिलेखा को प्रसन्न करने के उपाय तक रहती है।

विमोचन सचि

जहाँ सचि में प्रकटित बीजार्ध का बोध अथवा व्यसन से या विलोभन से विमोचन या पर्यालोचन किया जाता है वहाँ विमोचन सचि होती है। इस सचि के अंतर्गत गर्भ से उद्धित प्राचाय उपाय रूप बीज और भी अधिक उद्धित प्रतीत होता है। साथ ही साथ बाह्य परिस्थिति के कारण आने वाली विधि बाधाओं से भी संघर्ष प्रदर्शित होता है जिसके कारण विमोचन सचि में गर्भ सचि की अपेक्षा बीज कुछ अधिक स्पष्ट हो जाता है, तथा फलोपाय रूप रूप में उमर कर सामने आता है।

1 दशरथपक, 1.36: गर्भस्तुन्दनदनाप्रथ बीज स्थापनेश्वरमुः।
 द्रादशाड़यः पताका स्थाप्त न वा स्थानालिनिसमन्वः।

2 दशरथपक, 1.43: कृतेरास्वगृहेयं व्यसनादं विलोभनात।
 गर्भनिर्मित्यातिजात: सोज्यर्मो इति स्मृतः।।

3 साहित्यदर्पण 6.79: यत्रमुद्ध फलोपाय उद्धितनोगर्भस्वर्धिकः।
 शापार्ध: सातसारायत्र स विमार्यं इति स्मृतः।।
चन्द्रकला नाटिका के चतुर्थ अंक में बन्दीगण आने के बाद बसन्तलेखा की प्रश्नानता से विरूद्धरहित चन्द्रकला की प्राप्ति का निर्धारण हो जाने से विमिश्र संधि है जबकि नाटिका में विमिश्र संधि का स्थल नाटक की अपेक्षा कम होता है।

इसमें प्राप्त्यांश की प्रधानता और अप्राप्ति अंश की न्यूनता होती है।

निर्विहण

बीज से समबन्ध रखने वाले जो प्रारम्भ आदि व्यापार मुख आदि संधियों में दिखाई जाते हैं उनका मुख्य प्रयोजन के साथ समबन्ध दिखाई देते हैं जो उपसंहार किया जाता है वही इतितृत्त का भाग निर्विहण संधि कहलाता है।

इस संधि के द्वारा नायक का उपसंहार होता है। समस्त नाटक में बीज विख्यात रहता है, कहीं उत्पति के रूप में, कहीं उद्घाटन के रूप में और कहीं फलोनुक्तिवर्ग के रूप में। अंत में सबका पाप्वत्सान अर्थात् एक अर्थ के रूप में ले जाना ही निर्विहण संधि है।

यह संधि सभी रूपकों के लिए अनिवार्य है।

चन्द्रकला नाटिका में निर्विहण संधि राजा के इस कथन से – “कर्षण मम प्रियतमा चन्द्रकलैव” — मुख आदि संधि में रखे गये कार्यों का (चन्द्रकला समागम) रूप कार्य के लिए समाहार हो जाने से मूर्तित होती है। फलागम कार्यवस्था तथा कार्यनामक अर्थ प्रकृति के सहयोग से निर्विहण संधि प्रयोग की जाती है। इन दोनों के सहयोग से ही यह संधि प्रतिफलित होती है。

---

1. वही, 6.272: "कथाविवरणक: संघय: पुनः।"
2. वही, 6.80: बीजवततो मुखाद्वशिर्विक्रिया यथायथमः।
   एकाल्युम्बुपनीयत्वात्रत्र निर्विहण हि तत्।।
3. दशरूपक, 1.48: बीज वततो मुखाद्वशिर्विक्रिया यथायथमः।
   एकाल्युम्बुपनीयत्वात्रत्र निर्विहण हि तत्।।
4. नादयदर्शन, 1.40: सबीज विकृतावशिष्य: नानामांगमाउक्तिवर्गः।
   फलसंयोगसंस्तिं असी निर्विहणो धूर्यम्।।
5. चन्द्रकला, चतुर्थांश ३८७ ७७
चन्द्रकला नाटिका में कबिराज विश्वनाथ ने पाँच संस्थियों का प्रयोग बड़ी निरुक्ता से किया है जिससे नाटिका में उत्तरोत्तर सरसता, सरलता, और क्रम-बदलता के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

मुख संध्याकाल

बीज के आरम्भ के लिए मुख संधि के बारह अंग प्रयोग किये जाते हैं।1 जो क्रमशः इस प्रकार से हैं—

उक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोमन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिमाणना, उद्भेद, भेद तथा करण ये मुख संधि के बारह अंग हैं। चन्द्रकला नाटिका में इनका वर्णन हुआ है इन बारह अंगों में से उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, युक्ति, उद्भेद और समाधान का होना सभी रूपकों में आवश्यक है रूपकों में इनका साक्षात् या परस्पर से विधान किया जाता है विश्वनाथ विचित्र चन्द्रकला में निम्न मुख्य संध्याकाल है—

उपक्षेप

नाटक के आरम्भ में बीज का न्यास कर देना ही उपक्षेप है2 चन्द्रकला नाटिका में नेपथ्य में—रमणीय पदार्थ का विशेषक तक उपभोग प्राप्त रहने पर भी अपने सामने किसी अन्य वस्तु को देखने पर मन फिर से उसी और भाग्य लगता है।3 इस कथन के द्वारा चित्ररथेदेव के साथ चन्द्रकला परिणाम का हेतु जो कि देव की अनुकूलता से युक्त सुदुःख का व्यापार है उसको बीज रूप में स्थ दिया। अतः यहाँ चन्द्रकला के प्राप्ति रूप फल के बीज का न्यास होने से उपक्षेप नामक मुखसंध्याकाल है।

1 दशरूपक, 1.25–26

नाट्यदर्पण, 1.41–42

2 दशरूपक, 1.27: बीजन्यास उपक्षेप:

नाट्यदर्पण, प्रथमविवेकः, सूत्र—50 बीजस्थोत्तिरुपक्षेपः।।

3 चन्द्रकला, 1.5: विराधिदंगल वस्तु स्यात्मव्यावहरार्या।

पूरा प्रतिवंश बीज मनस्तदनाद्रावति।।
परिकर

बीज की वृद्धि ही परिकर है¹ अर्थात् जब बीज न्यास का बाहुळ्य पाया जाये तो उसे परिकर कहते हैं। चन्द्रकला नाटिका की प्रस्तावना में सुन्दरधार का यह कथन ठीक है कि नट, बिल्कुल ठीक कहा 'कि हमारे स्वामी का चन्द्रकला में अनुसार हो सकेगा या नहीं इस प्रश्न का उत्तर दे दिया है।² सुबुद्धि नेपथ्य में कहे गये शब्दों को पुनः दोहराता है जिससे बीज में वृद्धि की सम्भावना बढ़ जाती है। अतः यहाँ पर परिकर नामक सच्चयंग है, क्योंकि यहाँ बीज की वृद्धि प्रदर्शित की गई है।

परिन्यास

बीज की निष्ठति को परिन्यास कहते हैं³ अर्थात् बीज के न्यास के बाहुळ्य रूप परिकर की सिद्धि परिन्यास कहलाती है। धीरे-धीरे नाटक के पात्र को अपने फल बीज में और अधिक विस्वास हो जाता है जैसे सुबुद्धि चन्द्रकला के साथ पाणिग्रहण करने वाले व्यक्ति को महान्य अमूल्य की प्राप्ति होगी, ऐसा सोचकर चन्द्रकला को महाराणी के अन्तःपुर में रखवा देता है।⁴ इस कथन से सुबुद्धि के द्वारा अपने व्यापार की सिद्धि बतलायी गई है अतः यहाँ पर परिन्यास नामक मुख सच्चयंग है।

¹ दशरथक, 1.27: तदद् बाहुळ्यं परिक्रिया।
² चन्द्रकला, प्रथमांक, पृष्ठ 4-5: साधु! शैलूक साधु! अनेन खलु चन्द्रकलायं भर्तु।
स्वरूपवासि: स्यान्वेदितं चिन्तयतो मम दत्तेव प्रतिवर्तनं भवत।
³ दशरथक, 1.27: तत्निष्ठति: परिन्यास।
⁴ चन्द्रकला, प्रथमांक, पृष्ठ 5-6: इत्यमानुपूर्वी गिर्मंकण्यं तत्परिणयनेन।
भर्तुरुपवं महान्यं चिन्तयता पाणिक्यताः
दुहितुमहादिद्वेयं मयेन स्वयं महाराजेनैनाः
परिन्यायविद्युम्भशकुन्तानाः:..............।
विलोभन

जब गुणों का वर्णन किया जाये तो उसे विलोभन कहते हैं। रूपक में नायकादि को फल की ओर लुभ करने की दृष्टि से कवि गुणों का आध्यात्म करता है। इसलिए नायकादि में इस प्राप्ति का लोभ होने से यह तत्व विलोभन है। चन्द्रकला नाटिका में नायिका को देखकर राजा कहता है कि यह मानों यौवन का विलास, वृद्धिगत लावण्य सम्पत्ति का मधुर हास, पृथ्वी का भूषण और युवकों के मन को आकृष्ट करने वाला वशीकरण मन्त्र है। यहाँ पर कथा के सौन्दर्य वर्णन से राजा के हृदय में चन्द्रकला के प्रति अनुराग का बीज उत्पन्न होता है। चन्द्रकला के गुणों द्वारा राजा का विलोभन किये जाने से यहाँ पर विलोभन नामक मुख सन्धि का अंग है।

उद्धेद

जहाँ अब-तक छिपे हुए बीज को प्रकट कर दिया जाये अर्थात बीज के अनुकूल किसी गूढ बात का भेदन हो उसे उद्धेद कहते हैं। कवि बीज का संकेत तो पहले ही कर देता है; किन्तु बीज के साधनादि का उद्धेदन स्पष्टः इसी के अन्तर्गत करता है जैसे चन्द्रकला में राजा थोड़ा मुस्कराकर कहता है कि अरे मित्र, उस मृगनयनी रुपी अमृत धारा को छोड़कर अन्य किसी पदर्थ से यह आग जैसे शान्त हो सकेगी। एक अन्य स्थल पर भी उद्धेद सम्बन्ध का प्रयोग हुआ है जहाँ यह बिना प्रसन्नता के ही मुस्कराने लगती है, देखी जाने पर देखना नहीं चाहती है और अपनी सन्धि से समाधान किये जाने पर उसका असंगम-सा उत्तर

1 दशरूपक, 1.27: गुणाख्यातं विलोभनम्
2 चन्द्रकला, 1.9: तारण्यस्य विलासः समाधिकलावण्य सम्पदोहाः
3 दशरूपक, 1.28: उद्धेदं गूढं भेदनम्
4 चन्द्रकला, 1.11: परिहार सुधाधारां तामेव मृगलोचनाम्
दे रही है।

रूपक की कथा के अनुरूप जहां पर प्रकृत कार्य का आरम्भ हो वहाँ करण नामक मुखसन्ध्यंग होता है।

करण

जहाँ नायकादि के हृदय में सुख-दुःख उत्पन्न हो वहाँ विधान नामक मुख सन्ध्यंग होता है।

विधान

1. चन्द्रकला, 1.14: हसति परितोष रहितं निरीक्षणानापि नेक्ष्ते किमपि।

2. दशरूपक, 1.29: करण प्रकृतारमः।

3. चन्द्रकला, 1.19: आसादयति न यावनाभविति भवतीमिहेव पुनः।

4. दशरूपक, 1.28: विधानं सुखं दुःख्रूपः।

नाट्यदर्पण, 1.55: करण प्रस्तुत किया।

नाट्यदर्पण, 1.60: विधानं सुखुदश्रूपादि।
वशीकरण का मन्त्र है। विद्वानक― तो फिर उस कन्या ने क्या किया? राजा—
उसने अपनी मौजूदा को छोड़ा खिला कर और खातों को सिकुड़कर अपने
रोमांचित मुखकमल को झूका लिया तभी महारानी की दासियों वहाँ आ गई और
उसे वहाँ से दूर हटाकर शीघ्र ले गई।१ यहाँ पर राजा का अनुराग और
चन्द्रकला का अवलोकन, राजा तथा चन्द्रकला के समागम का हेतु है जो बीज
tे अनुकूल होकर ही सुख—दुःख की अनुभूति कराने वाला है। अतः यहाँ विधान
नामक मुख सन्ध्यङ्ग है।

परिभाषाना

जहाँ अदभूत आवेश हो अर्थात् आश्चर्य की भावना पात्र में पाई जाती हो वहाँ
परिभाषाना होती है।२ जैसे चन्द्रकला में राजा का कथन—विस्मय के साथ
चन्द्रकला के अंगों को दिखाते हुए — इसके पृथ्वी पर रखे जाने वाले दोनों पैर
सोने के कमल जैसे अहर्निशं किन रहे हैं, उरू कदली स्तम्भ जैसी, शोणिप्रदेश
लावण्य के जल में चूसे हुए दीप के समान लग रहा है और इसका मुख
निकलकं चन्द्रमण्डल जैसा सुषोभित हो रहा है।३ यहाँ पर चन्द्रकला के सीन्द्र्य
को देखकर राजा अपने आश्चर्य को प्रकट कर रहा है अतः यहाँ 'परिभाषाना'
नामक मुख—सन्ध्यङ्ग है।

---

१ चन्द्रकला, 1.9–10
२ दर्शाएं, 1.28: परिभाषाविदमूलावेश।
नाद्यर्धन, 1.61: विस्मय: परिभाषाना।
३ चन्द्रकला, 1.13: अभद्रमहर्षिन्त विकसितं सावर्णमत्राहितं
रम्भारम्भयुगं ततश्रं पुलिन्य लावण्यवारिष्ठेन्तुम।
तत्रमनुनाय कुमिक्कम्भयुगं रतनेकले खोद्दृष्टं
रजांत्र पुनः कलकोषितं: शीतलकुम्भयुगं।
युक्ति

कार्य का विचार करना युक्ति है।¹ प्रयोजनों का निर्णय करना ही युक्ति है।² चन्द्रकला नाटिका में जैसे—सुवृद्धि के कथन में 'कि कर्माणि देश में विजय हेतु प्रस्थान करते हुए हमारे विक्रमादित्य सेनाधीन को चन्द्रकला राणे में प्राप्त हो गई थी और इसके अनुयाय सौन्दर्य और शरीर के सुलक्षणों को ध्यान में रखते हुए इसे उच्चवशीय कण्या और सरसीर लक्ष्मी समझकर इसको मेरे समीप भेजवा दिया। इस घटना से लेकर चन्द्रकला स्वयं महाराज की दृष्टि में पढ़ जाएगी तो वे स्वयं इससे विवाह कर लेंगे।³ यहाँ प्रयोजन का निश्चय ही 'युक्ति' नामक सन्ध्याग्रह को सूचित करता है। एक यह कि विक्रमादित्य सेनाधीन का समागम में हेतु बनना और दूसरा सुगमतापूर्वक वितर्क की दृष्टि में कण्या का आ जाना दोनों लक्षण युक्ति नामक सन्ध्याग्रह के हैं।

प्राप्ति

जहाँ फल प्राप्ति की आशा में सुख का आगम हो, वहाँ प्राप्ति नामक मुखांग होता है।¹ इसे प्राप्ति सागर से भी अभिन्नित किया गया है।² चन्द्रकला में राजा बड़ी हैरानी के साथ चन्द्रकला के रूप सौन्दर्य एवं उसके अंगों को निहारता है फिर मन ही मन यह विचार कर लेता है कि चन्द्रकला भी निर्मित रूप से अपने अन्तर्गत में काम के विकार लिए हुए हैं, क्योंकि यह बिगा किसी प्रश्ननिता के ही मुखराने लगती है।³ यहाँ राजा का औत्सुक्य रूपी बीज के समाचार में सुख प्राप्ति हो रही है, अतः प्राप्ति नामक मुख सन्ध्याग्रह है।

¹ नाट्यदर्पण, 1.59: युक्ति कृत्य विचारणा।
² दशरूपक, 1.27: सप्रापणमध्याना युक्ति:।
³ चन्द्रकला, प्रथमांजलिक, पृष्ठ 5
⁴ दशरूपक 1.27: प्राप्ति सुखाचार:।
⁵ नाट्यदर्पण, 1.58: प्राप्ति सुख सम्प्राप्ति:।
⁶ चन्द्रकला, प्रथमांक, पृष्ठ 13–14
समाधान

बीज का उपादान, फिर से बीज का युक्तिके द्वारा व्यवस्थापन समाधान कहलाता है। 1 दूसरे शब्दों में संकेत में उपश्रिल बीज का पुनः स्पष्ट रूप से आधार 'समाधान' कहलाता है। 2 चन्द्रकला में महारानी वसन्तलेखा सेविकाओं को आदेश देती है कि चन्द्रकला को राजा की दृष्टि से बचाकर रखा जाये; किन्तु एक दिन अधानक अन्तरुप में राजा की दृष्टि चन्द्रकला पर पड़ जाती है।

सुनन्दना के इस कथन से कि एक बार जब महाराज सहसा महारानी से मिलने को रिवास में चले आ रहे थे तो यह (चन्द्रकला) अधानक उनकी दृष्टि में वहीं पर आ ही गई। 3 इसके अनुसार राजा तथा कन्या के परस्पर दर्शन रोकने पर भी कन्या का दर्शन होने से समागम हेतु बीज का सम्प्रक्ष आगमन हुआ है। अतः समाधान नामक मुख सन्दर्भ है।

भेद

जहाँ प्रोत्साहन पाया जाये अर्थात् पात्र को बीज के प्रति प्रोत्साहित किया जाये वहाँ भेद सन्ध्यंग होता है। 4 चन्द्रकला नाटिका में इस सन्ध्यंग का भी उल्लेख है।

जब सुनन्दना चन्द्रकला के सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए यह कहती है कि निरिचि ही राजा कन्या के सौंदर्य को देखकर मुख होकर रहेंगे इससे सुबिधि को प्रोत्साहन मिलता है और वह राजा का मिलन करवाने में भरसक प्रयास करता है। 5 अतः यहाँ पर भेद नामक मुखसन्ध्यंग है।

---

1 दशरूपक, 1.27: बीजगम: समाधानम्।
2 नाट्ययज्ञायः 1.43: पुनर्यज्ञायः समाहितिः।
3 चन्द्रकला, प्रथमांक, पृष्ठ 7
4 दशरूपक, 1.29: भेदः प्रोत्साहना मता।
5 चन्द्रकला, प्रथमांक, पृष्ठ 6
प्रतिमुख सन्ध्याङ्क

बीजं तथा प्रयत्न से अनुगत प्रतिमुख सन्धि के तीन अंग हैं—विलास, परिसर्प, विविधत, शम, नर्म, नर्मद्वृति, प्रगमन, निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपज्ञास तथा वर्गसंहार।¹ विश्वनाथ ने चन्द्रकला नाटिका में निम्न प्रतिमुख सन्ध्याङ्क का वर्णन किया है—

विलास

रति के लिए इच्छा को विलास कहते हैं।² अर्थात् स्त्री और पुरुष की परस्पर सम्मिलन की इच्छा विलास कहलाती है। जैसे मुख सन्धि में चन्द्रकला के प्रारंभ होने पर प्रतिमुख सन्धि में उसके विषय में राजा की रतिविषयक इच्छा विलास है। द्वितीय अंक में वह दृश्य जब राजा कहता है कि एक और तो यह आकाश जैसा भी है बार-बार उस मृगनियना से वियोजन होने के कारण बेचैन मन वाले मुझ पर चन्द्रमा की शीतल किरणों के बहाने अभिन विकीर्ण कर रहा है।³ यहाँ राजा की चन्द्रकला के प्रति रतिविषयक इच्छा जागृत हो रही है। अतः यहाँ विलास नामक प्रतिमुख सन्ध्याङ्क है।

परिसर्प

जब बीज एक बार देखा गया हो, तब यह दृश्य देखकर नष्ट हो जाये और उस बीज की पुनः खोज की जाए तो वह परिसर्प प्रतिमुख सन्ध्याङ्क कहलाता है।⁴ चन्द्रकला नाटिका के द्वितीय अंक में चन्द्रकला राजा के संकेत के अनुसार राजा

¹ दशरथप्रक, 1.31: विलास: परिसर्प विविधत शम नर्मणी
नर्मद्वृति: प्रगमन निरोध: पर्युपासनम।।
वज्र पुष्पमवासो वर्ग संहार इति।

² वही, 1.32: स्त्याः हृद विलासस: स्याद।
नादयद्वर्ग, 1.63: विलासेऽस्य—दत्तयोपको।।

³ चन्द्रकला, 2.2: योगमण्डलमवं समाकुले तातं चमूला—चलोचना विना
शीत—दीपिती—मयःशक्तोवांचतीत्वात्माय मायि मुपुरं मुह।।

⁴ दशरथप्रक, 1.32: वृष्टोपनसर्पर्ञम्।
से मिलने के लिए कैसिवन में आती है; किन्तु महारानी द्वारा कुमुदिनी का विवाह महौसत्व आयोजित किये जाने के कारण राजा संकोचित स्थान पर नहीं आते हैं।

इस प्रकार पहले देखे गए और फिर नष्ठ हुए बीज को खोजती हुई सुनन्दना तथा विद्वृक्षक की उबलति ‘परिसरि’ प्रतिमुख साध्याक है।

विधुत

सुखप्रद पदार्थों के प्रति अरुचि या आनदर को विधुत कहते हैं। चन्द्रकला नाटिका में कामागर्जि से सन्तप्त चन्द्रकला को चन्द्रमा की शीतल किरणे हलाहल की वर्षा के समान लगती है। यहाँ चन्द्रकला की चन्द्र की शीतल किरणों के प्रति अर्थति या अरुचि है अतः यहाँ विधुत नामक प्रतिमुख साध्याक है।

शाम

जब अर्थति की शान्ति हो जाये तब शाम नामक प्रतिमुख साध्याक होता है।

चन्द्रकला नाटिका में राजा चन्द्रकला को सुनन्दना के बहने पर हाथ का सहारा देकर उठाते हुए चन्द्रकला के स्पर्श का एहसास करते हुए कहते हैं कि इस समय इस मूणनकी के करपल्लव के स्पर्श करने के साथ ही तत्काल भें र मन सुधामय सागर की तहरों में निम्न सा—हो रहा है। चन्द्रकला द्वारा अपनी ओर राजा का प्रेम जानकर चन्द्रकला की अर्थति शान्त हो जाती है अतः यहाँ पर "शाम" नामक प्रतिमुख साध्याक है।

नर्म

परिहास युक्त वचन को नर्म कहते हैं। मनोरंजन के लिए हास्य करना ‘नर्म कहलाता है।’ चन्द्रकला नाटिका में राजा का विद्रूप से यह कथन है कि मित्र

1 चन्द्रकला, द्वितीयांक पृष्ठ — 24.
2 दशरूपक, 1.32: विद्वृत्तांग्य द्वितीयांक पृष्ठ — 37.
3 चन्द्रकला, द्वितीयांक पृष्ठ — 37.
4 दशरूपक, 1.32: तस्या अस्तत्तत्त्वम्: शामो।
5 चन्द्रकला, 2.16: करपल्लवसन्धांगेन……………… सुधामये।
6 दशरूपक, 1.33: परिहासवयो नर्म।
7 नाट्यदर्पण, 1.68: कीड़ये हसनं नर्म।
और क्या हो सकता है, उस कन्या ने अपने विलोभन भरे गुणों से हमारे हृदय को अति आँखूँ खर डाला है और इसी कारण वहाँ बड़े जोर से कामानि जल उठी है।

विद्वृक्ष—आश्चर्य! तो फिर जलदी आगे बढ़कर इस बापिका से जल निकालकर इस अर्हि को दुःख दीजिये। यहाँ परिहास युक्त वचन होने से नर्म सन्ध्यंङ्ग है।

नर्मधुरि

धेरे की स्थिति नर्मधुरि कहलाती है। यह दोष को छीपाने के लिए है। चन्द्रकला में विद्वृक्ष के इस हास्य कथन से राजा को आनन्द की प्राप्ति होती है कि यह धपत चन्द्र मक्खन का गोला—सा दिखाई दे रहा है और इसकी किरणें दृश्य की धाराओं जैसी चारों दिशाओं में बसर रही हैं। अतः धेरे की स्थिति होने से यहाँ नर्मधुरि है।

प्रगमन

जहाँ पात्रों में परस्पर उत्तरोत्तर वचन पाये जायें वहाँ प्रगमन होता है। प्रश्नोत्तर परम्परा का नाम प्रगमन है। चन्द्रकला नाटिका में विद्वृक्ष तथा राजा में परस्पर वार्तालाप से अनुराग बीज उत्पन्न हो रहा है। राजा—अहो! यह हमारे प्रिय मित्र को भोजन मटटूता तो अनोखी रही है। अछू तो मित्र, अब बतलाओ कि मेरी प्रियतमा चन्द्रकला कहाँ है? विद्वृक्ष—मित्र देखो, देखो प्रियतमा तो तुम्हारी इधर ही आ रही है।

1 चन्द्रकला, प्रथमांक, पृ० 11
2 दशरथपक, 1.58: धृतिसृत्तज्ञाधुरिमति।
3 नाट्यदर्पण, 1.69: दोषावृत्ती तु तदुपति।
4 चन्द्रकला, 2.8: एष शाश्वरमिवो दृश्यते हैदरगवीनपिण्ड इव।
5 दशरथपक, 1.34: उत्तरावाकप्रगमनम्।
6 नाट्यदर्पण, 1.72: प्रगम: प्रतिवाक—अभिषेक।
राजा— (देखकर प्रसन्न होते हुए) इस मुख चन्द्र को देखकर मेरा सारा सन्ताप चला गया; परंतु इसके मन में मदन शर के द्वारा होने वाला सन्ताप कैसा है?

विषय विवरण के कारण इन्होंने अलंकार भी धारण नहीं किया है।

यहीं पर विद्वान क तथा राजाके उपरोक्त वचनोंसे अनुरुग रूपी बीज उद्धारित होने से "प्रमाण" नामक प्रतिमुख सन्ध्यंग है।

निरोधन

हित का रूक जाना निरोधन कहलाता है।

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला का मिलन रूपी हित है जिसे महारानी के प्रवेश की सूचना देने वाली सुनन्दना के वचन ने रोक दिया है।

पर्युपासन

कुंद व्यक्ति को मनाना ही पर्युपासन है।

चन्द्रकला नाटिका में राजा का कथन है कि अरी चन्द्रमुखी, मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में आक्रोश का भाव रहना अनुचित होगा, क्योंकि तुम्हें छोड़कर मेरे प्यार का कोई लक्ष्य नहीं है और इतने पर भी है क़ृष्णांगी, मुझसे बिना पूछे ही तुम क़्रोध से अपने ओऽठों को फड़काती हुई वेग से जो चली जा रही हो यह क्यों? इसे तो बतलाओ।

यहीं पर महारानी ने विद्वान के हाथ में अंगूठी देखी और क़रोधित हुई। महारानी के क़्रोध को खाटा करने का उपाय राजा द्वारा किया जा रहा है तथा राजा द्वारा देवी को मनाया जा रहा है अतः यहीं पर पर्युपासन नामक प्रतिमुख सन्ध्यंग है।

1 चन्द्रकला, द्वितीयांक, पृष्ठ 31–34
2 दशरथपर, 1,34: हितोंबी निरोधनम।
3 चन्द्रकला, द्वितीयांक, पृष्ठ 38; सखि चन्द्रकले त्यंति एहेवह।
4 दशरथपर, 1,34: पर्युपासितसुनन्य।
5 चन्द्रकला, 2,18
पुष्प

जहां विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्धारण हो अथवा जहाँ पर वाक्य विशेष रूप से बीजोद्धारण करे वह पुष्प कहलाता है।1 चन्द्रकला नाटिका में राजा इस समय इस मृगनर्मी के कर पल्लव के स्पर्श के साथ ही तत्काल मेरा मन सुधामय सागर की लहरों में निमन्त्रण—सा हो रहा है।2 यहाँ पर राजा द्वारा विशिष्टता भरे कथन चन्द्रकला में अतिशय अनुराग को प्रकट कर रहे हैं। अतः यहाँ पुष्प नामक प्रतिमुख सन्ध्यांग है।

वचन

जहाँ नायकादि के प्रति कोई पात्र प्रत्यक्ष रूप में निष्कुर वचन का प्रयोग करे, वह वाक्य वचन कहलाता है।3 चन्द्रकला नाटिका में देवी वसन्त लेखा— (जोर से सांस लेकर) ओह! पुष्प का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। सखी रतिकले, जलदी से झुर आओ। चलों, मैं इस घोड़े—बाज के साथ एक क्षण भी ठहरना नहीं चाहती।4 यहाँ महारानी विद्वक के हाथ में चन्द्रकला की अंगूठी देखती है और राजा घनाक्रम जानकर राजा को निष्कुर वचन कहती है अत: यहाँ पर वचन प्रतिमुख सन्ध्यांग है।

उपन्यास

उपायुक्त वाक्य उपन्यास कहलाता है।5 चन्द्रकला में सुननदना का कथन — (देखकर प्रसन्न होते हुए) यह अच्छा हुआ। स्वामी यह मेरी सखी चन्द्रकला नवमालिका के पुष्प के समान मृदु स्वभाव वाली है, अतः आपकी विरह पीड़ा सहन करने में असाध्य है। इस वेदांत को जन्म से लेकर आज तक कभी भी ऐसे दुःख सागर से पाला नहीं पड़ा था। इसलिए आप स्वयं इसे अपने हाथों का

1 दशरूपक, 1.34: पुष्पावक्य विशेषवक्त।
2 चन्द्रकला, 2.16
3 दशरूपक, 1.35: वचन प्रत्यक्ष निष्कुरम्।
4 चन्द्रकला, दूतीयायक, पुष्प 43
5 दशरूपक, 1.35: उपन्यासस्तु सोपायम्।
सहारा देकर उठाइये।¹ यहाँ सुनन्दना द्वारा चन्द्रकला की विशालस्था के अस्त्यतः क्रूरं वर्णन के द्वारा अनुग्राह रूपी बीज उत्पन्न होने के कारण उपन्यास नामक प्रतिमुख सन्ध्यंग है।

गर्मसंध्यंग

गर्मसंधिचे बारह अंग होते हैं।² जो क्रमशः अभूताहरण मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल उद्वेग, संभ्रम और आक्षेप हैं। इनमें से अभूताहरण, मार्ग, तोटक, अधिबल तथा आक्षेप ये पांच मुख्य अंग हैं, रूप अंगों का यथासम्भव प्रयोग किया जाता है। चन्द्रकला नाटिका में निम्न गर्म सन्ध्यंगों का प्रयोग किया गया है—

अभूताहरण

जहाँं छदम या कपट हो वहाँं अभूताहरण गर्म सन्ध्यंग होता है।³ चन्द्रकला नाटिका में सुनन्दना के घर में छिपायी गई चन्द्रकला का बिदृशक तथा सुनन्दना के निश्चय द्वारा राजा विजयस्थ देव के प्रति चोरी से मिलन करवाना महारानी के प्रति छलपूर्ण कार्य होने से अभूताहरण गर्माङ्ग है, जो कि माधविका की उत्तिक्षर द्वारा दिखाया गया है— (स्वगत) ओह! इस वृद्ध ब्राह्मण का इतना साहस बढ़ गया है और वह गर्मदासी सुनन्दना भी इस तरह के काम करने लगी है।⁴

---

¹ चन्द्रकला, द्वितीयांक, पृष्ठ 37–38
² दसरूपक, 1.37: अभूताहरण मार्गों रूपोदहरण क्रम: संग्रह अनुमान च तोटकाधिबल यथा उद्वेग संभ्रमाक्षेपः लक्षण च प्रणीति।
³ वहीं, 1.38: अभूताहरण छदम।
 नाट्यदर्पण, 1.88: असत्याहरण छदम।
 साहित्यदर्पण, 6.95: तत्र व्याजाश्रय वाक्यमभूताहरण मतम्।
⁴ चन्द्रकला, तृतीयांक, पृष्ठ 47
तोटक

क्रोध या आवेग से युक्त वचन तोटक कहलाता है। ¹ यह हृदय को तोड़ने वाला वचन होता है, अतः इसे तोटक कहते हैं। चन्द्रकला नाटिका में राजा का यह कथन कि अब मुझे महाराणी और पृथ्वी दोनों ही अपने प्रेम वचन में आबद्ध नहीं कर सकती है। अर्थ कृष्णदय आज से केवल तुम्ही मेरा जीवन है। ² यहाँ पर राजा के आवेगपूर्ण वचनों से वसंतलेखा को गहरी वेदना हुई है अतः यहाँ 'तोटक' गर्भसम्भवन है।

अनुमान

किसी बिन्ह के द्वारा बात का निश्चय करना अनुमान कहलाता है। ³ नाटिका में चन्द्रकला से प्रेम करने के कारण राजा का जो महाराणी से प्रगाढ़ प्रेम था वह स्वभावित हो गया है जो कि महाराणी के लिए असहनीय था। अब वसंत लेखा के क्रोध का दूर होना दुःखकर है ऐसा अनुमान लगाया जाता है। राजा— ने रे इस प्रकार दूसरी प्रेयसी के साथ समागम को अपनी आँखों से देखने वाली महाराणी के क्रोध को शांत करना कैसे सम्भव हो सकता है। ⁴ द्वितीय अंक में रतिकला—सभी यहाँ जो किसी सुलक्षण के पैरों के निशान हैं इससे मुझे शांका हो रही है कि कहीं महाराज तुम्हसे छिपकर किसी अन्य युवती से तो प्रेम करने नहीं लग गये। ⁵ यहाँ पर पैरों के निशान से अनुमान लगाया जा रहा है। अतः अनुमान गर्भ सम्भव है।

¹ दशरथक, 1.40: संस्कार तोटक वचः।
नाट्यदर्पण, 1.89: तोटक गर्भरंग वचः।
² चन्द्रकला, 3.19
³ दशरथक 1.40: अधृतो लिंगाधारोऽनुमः।
साहित्यदर्पण, 6.98: लिंगाधारोऽनुमानात।
नाट्यदर्पण, 1.79: अनुमानित्वाय लिंगाधः।
⁴ चन्द्रकला, 3.20
⁵ वही, द्वितीयांक, पृष्ठ 40
क्रम
सोची हुई वस्तु का प्राप्त होना क्रम कहलाता है या ज्ञान को क्रम कहते हैं।  
चंद्रकला नाटिका में राजा का चंद्रकला से समागम संचित्त्वमान अर्थ की प्राप्ति  
रूप होने से 'क्रम' नामक गर्भसन्ध्यंग है जैसे विद्वृषक-मित्र देखो यही है तुम्हारी  
प्रियतमा जो इस घने अन्धेरे में भी अपने शरीर की आभा से अलग ही चमक रही  
है।

मार्ग
जहाँ निशिचित तत्त्व का वीरत्न हो, वह मार्ग है।  
नायकादिपात्र के प्रति किसी  
शुभमित्तक के द्वारा प्राप्ति के मार्ग की सूचना दी जाती है।  
चंद्रकला नाटिका में  
राजा का यह कथन कि मित्र आओ आओ। बतलाओ तो मेरे विनोद का प्रदेश  
और मेरी मननवेदना के अपहरक हृदय का व्या समाचार है? विद्वृषक-  
में उसे  
यहाँ से समीप विद्यामान मणिमण्डप में सुनन्दन के साथ ले आया है।  
यहाँ पर  
विद्वृषक द्वारा सुनन्दन की सहमति से निर्धारित किये गये चंद्रकला के समागम  
का वृत्तांत यथार्थ रूप में राजा से कहे जाने के कारण 'मार्ग' नामक गर्भ सन्ध्यंग  
है।

उद्वेग
शान्तों के द्वारा किया गया भय उद्वेग कहलाता है  
अर्थात् चोर, नूप, नायक और  
नायकादि से उत्पन्न होने वाला जो भय है जिसके कारण नियमाति में विचार  
उपस्थित होता है उसका वर्णन ही उद्वेग है।  
चंद्रकला नाटिका में राजा का  
यह कथन कि अब तो मेरी चेतना भी नियमन रण से बाहर होने लगी है।  
इससे

1 दशरूपक, 1.39: भावज्ञानगथापरे। क्रमः संचित्त्वमानानि।
2 चंद्रकला, तृतीयांक, पृष्ठ 49
3 दशरूपक 1.39: मार्गसन्ध्यंग कीर्तनम्।
4 चंद्रकला, तृतीयांक, पृष्ठ 57
5 दशरूपक, 1.42: उद्वेगोपरिवर्तिता भीति।
6 चंद्रकला, तृतीयांक, पृष्ठ 63
चन्द्रकला समागम के समय उपस्थित महाराणी से उत्पन्न राजा का भय प्रदर्शित होता है। अतः यहाँ उद्वेग गर्म सच्चांयंग है।

उदाहरण

उत्कर्ष या उन्नति से युक्त वायु उदाहरण कहलाता है।¹ चन्द्रकला नाटिका में राजा का यह कथन कि अन्य पुरुषों से चलाये गये बाणों का निशाना चूक सकता है; परन्तु काम के बाण कभी अन्यथा लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते।² यहाँ कायदेव के बाणों का उत्कर्ष वर्णित है अतः यहाँ “उदाहरण” नामक गर्म सच्चांयंग है।

अधिवल

जहाँ किन्हें पात्रों के द्वारा नायकादि का अभिप्रय जान लिया जाये वहाँ अधिवल होता है।³ अर्थात् वंचना ही अधिवल कहलाता है। सुनन्दा के घर में वसन्तलेखा द्वारा छिपाई गई चन्द्रकला का विदूषक तथा सुनन्दा द्वारा राजा से समागम कराकर वसन्तलेखा के विश्वास की वंचना की गई है। विदूषक कहता है कि आज ही रात्रि में चुपचाप छिपाकर चन्द्रकला को भिड़वा दिया जाएगा जिससे मेरे प्रयम्यत्र के साथ उसका मिलन सम्भव हो जाए। अब यदि मेरे इस कार्य का पता महाराणी को न लगे तो प्रयास सफल हो जाएगा।⁴ अतः वंचना होने से यहाँ अधिवल नामक गर्म सच्चांयंग है।

¹ दरसूरपक, 1.39: सोत्कर्षस्यादाध्युतं।
नाट्यदर्पण, 1.81: उदाहरणः समुत्कर्ष।।
साहित्यदर्पण, 6.96: उदाहरणमुत्कर्षगुरूः वचनमुखते।
² चन्द्रकला, 3.15
³ दरसूरपक, 1.40: अधिवलमधिस्थिति।
नाट्यशास्त्र, 19.87
नाट्यदर्पण, 1.86 अधिवलं बलाधिक्षयम्।
साहित्यदर्पण, 6.99: अधिवलं अभिप्रयत्क्षलेन्य।।
⁴ चन्द्रकला, तृतीयांक, पृ 45–46.
आक्षेप

जहाँ गर्भ एवं बीज अथवा गर्भ के बीज का उद्देश्य हो, जहाँ बीज को विशेष रूप से प्रकट किया जाए वहाँ आक्षेप होता है। अर्थात् गर्भ के बीज का प्रकटन ही आक्षेप कहा गया है। चन्द्रकला नाटिका के ह्यतियांक के अंत में विदूषक का यह कथन है कि मित्र हम सबसे पहले महारानी को ही प्रसन्न करने के लिए चलें तथा राजा का कथन है कि मेरे इस प्रकार दूसरी प्रेयसी के साथ मिलन को अपने सामने देखने वाली महारानी के बड़े हुए सान को छुड़वाना कैसे सम्भव हो सकता है। यहाँ पर यह स्पष्ट हो जाता है कि देवी वसन्तलेखा की प्रसन्नता के अर्थ ही चन्द्रकला के समागम की सिद्धि हैं। अतः गर्भ के बीज को प्रकट करने के कारण यहाँ आक्षेप गर्भ संध्यांग है।

संग्रह

जहाँ नायकादि अनुकूल आचरण करने वाले पात्र को साम व दान से प्रसन्न करें वहाँ साम व दान की उक्ति संग्रह कहलाती है। चन्द्रकला नाटिका में देवी वसन्तलेखा विदूषक के प्रति कहती है कि स्वामी के प्रयंत मित्र यह पारितोषिक ले।

1 दशरूपक, 1.42: गर्भवृज्जसमुद्रादाय: परिखीरित।

चन्द्रवर्ष, 1.85: आक्षेपो बीजप्रकाशनम।

साहित्यदर्पण, 6.99: रहस्यार्थस्व तदनेद: सिंहित: स्पात।

2 चन्द्रकला, ह्यतियांक, पृ० 44

3 वही, 3.20: देवी: प्रेष्य समक्षावृज्जनितासारगम मेमेदारः

मानस्याधिविक वधानु भविताशृभोतिभूमिः गत।

ब्रह्मानीवत वल्लभेश्वर श्रुतं सार्द मुदश मल्हुः

निर्गच्छिन्नानाओपि सहसा तत्तु किं विधेयं मया।।

4 दशरूपक, 1.40: संग्रह: सामादानोक्त।

चन्द्रवर्ष, 1.77: संग्रह: सामादानादि।

साहित्यदर्पण, 6.97: संग्रह पृ०: सामादानार्थसम्पन्न।
लेने अर्थात अपने गले से हार निकालकर विदूषक को दे देती है यहाँ महारानी के द्वारा विदूषक को प्रशंसात्मक वचन तथा अपना हार पारितोषिक रूप में देने पर साम तथा दान से युक्त कधन ‘संग्रह’ नामक गर्भ सन्ध्यांग को सूचित करता है।

विमंश सन्ध्यांग

विमंश सन्धि के तेरह अंग हैं—अपवाद, सम्फेट, विद्रव, द्रव, श्वेत, दुःति, प्रसंग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्रशोधना, विचलन एवर्मा आदान। चन्द्रकला नाटिका में विश्वनाथ ने निम्न विमंश सन्ध्यांगों का प्रयोग किया है—

अपवाद

जहाँ किसी पात्र के दौंगों का वर्णन किया जाये वहाँ अपवाद होता है। अर्थात् किसी की निन्दा करना अपवाद कहलाता है। चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा का राजा के प्रतिकूल होने पर वसन्तलेखा के दौंगों का कथन किया गया है कि अनेक प्रकार की वंचना और भाटुकालिता से अनेक वंचना से आलाप करते हुए भी महारानी अभी तक प्रसन्न नहीं हुई और न ही उसका क्रोध उत्तर पाया। एक अन्य स्थान पर भी अपवाद का उल्लेख आया है जब कोमलांगी प्रयत्न के अंगों को अच्छी तरह कसर कर बांधते हुए उसकी ऐसी स्थिति कर दी कि उसके प्राण संकट में आ गये तो बतला कि उस बेचारी ने तो मेरा क्या विगाड़ था।

---

1. चन्द्रकला, द्वितियांक, पृ० 42
2. दशरथपक, 1.44: त्राणवापदसंपेटो। विद्रववशक्तय: दुःति प्रसंग
   छलन व्यवसायो विरोधनां प्रशोधना विचलनमादानां
   च त्रयोदशा।
3. वही, 1.45: दोषप्रक्ष्यापावाद: व्यालु।
   साहित्ययद्धरण, 6.101:दोषप्रक्ष्यापावाद: स्वालु।
4. नाद्ययद्धरण, 1.94: अपवाद: परीवाद।
5. चन्द्रकला, 4.2: आलाप वंचनपर भहुचुदुगर्म मेष स्थितोस्मि धिरसापिते
   निपत्त्य आलोज्जमिश्यापित तथा मदर्स्य देवी कर्त्चन पुनर्म गता प्रसादम्।
6. चन्द्रकला, 4.3: हे दुर्दैव यदा चिरस्य भवतो भूयोप्रादृं नया
   तपस्येवमानातं प्रहस्तों वक्षे न किचित्तव।
यहाँ पर वस्तुलेखा के दोषों का वर्णन किया गया है अतः यहाँ अपवाद विवर्त सन्ध्याग है।

शक्ति

विरोध का शान्त हो जाना शक्ति कहलाता है। ¹ चन्द्रकला नाटिका में पाण्डुर्गेश से बन्दीगण के अनेक से महारानी का राजा के प्रति क्रोध शान्त हो जाता है जो कि राजा तथा विद्वा्क की उद्यति से स्पष्ट होता है कि राजा—(सुनकर प्रसन्न होते हुए) मित्र, यह तो उस महारानी की अपने ऊपर कूपा ही मानता हूँ जिसका मेरे प्रति क्रोध का दूर होना तक दुकार था अच्छा! अब तो यह बतलाओ कि बन्धन से तुम कैसे छूट गए?

विद्वा्क—ज्यादा क्या! अपने बन्धुजन से मिल जाने से प्रसन्न होकर ही में बन्धुमुक्त हो गया हूँ। ² अतः महारानी के क्रोध का शान्त होना यहाँ शक्ति नामक विवर्त सन्ध्याग है।

विद्रव

किसी पात्र का मारा जाना, बन्दी हो जाना, भय से पलायन आदि करना विद्रव कहलाता है। ³ चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला के बन्धन का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि ‘उस बेचारी कोमलानी के अंगों को कसकर जोर से बांधकर उसकी ऐसी दशा कर दी कि उसके प्राण संस्थाय में आ गये तो बतलाओ कि उस बेचारी ने तेज़ क्या बिगाड़ा था!’ ⁴ अतः यहाँ विद्रव नामक विवर्त सन्ध्याग है।

---

¹ दशरूपक, 1.46: विरोधशान्ति शक्ति।
² चन्द्रकला, चन्दकला, पृ 67
³ दशरूपक, 1.45: विद्वा्क बधबन्धादि।
⁴ चन्द्रकला, 4.3
व्यवसाय

जहाँ कोई पत्र अपने सामथर्य के विषय में कहे वहाँ व्यवसाय नामक विमर्श सन्ध्यंग होता है।1 चन्द्रकला नाटिका में बन्दीगण का यह कथन कि पाण्डुप्राप्त की अपरहान की गई पुत्री का नाम चन्द्रकला है।2 अर्थनीय फल (चन्द्रकला और चित्रभद्रा का समागम) का हेतु होने से वहाँ 'व्यवसाय' नामक 'विर्मश' सन्ध्यंग है।

आदान

जब नाटककार उपसंहार की ओर बढ़ने की कामना से रुपक की वस्तु के कार्य को संग्रहित करता है अर्थात समेटने की चेष्टा करता है तो वह विमर्श अंग आदान कहलाता है।3 चन्द्रकला नाटिका में मन्त्री सुबंधि के इस कथन के बारे में कहता है कि 'जिस महिपति का इस कन्या (चन्द्रकला) के साथ पृथ्वी पर जब विवाह होगा तभी लक्ष्मी स्वयं उपरिथ्य होकर उसे अभिषेक वर रेती।' इस प्रकार की विवाहारणी को सुनकर मेरी इच्छा प्रवर्त हो गई ऐसी सुलक्षण कन्या का विवाह अपने स्वामी को करवाया जाए और फिर राजा का यह कथन है कि यह तो वही मेरी प्रियतमा चन्द्रकला ही है।4 इन दोनों कथनों में 'आदान' नामक विमर्श सन्ध्यंग विद्यमान है।

1 दशरथक, 1.47: व्यवसाय: स्वरक्पुकि:।
2 चन्द्रकला, चतुर्थीक, पृ० 77
3 दशरथक, 1.47: आदान कार्यंग्राह:।
4 साहित्यदर्शन, 6.107
4 चन्द्रकला, चतुर्थीक, पृ० 76–77
प्रस्तुति

जब कोई सिद्ध व्यक्ति अपने चरित्रों के द्वारा भाविक घटना की सूचना इस प्रकार दे दें जैसे कि वह घटना सिद्ध ही हो, वहाँ प्रस्तुति नामक विविध सत्यांग होता है।' चन्द्रकला नाटिका में सुप्रसिद्ध का नट से यह कथन कि "जिस महाप्रति का चन्द्रकला के साथ पृथ्वी में जब विवाह होगा तभी लक्ष्मी स्वयं आकर उसे अग्नि वर्दान देगी"² यह कथन चन्द्रकला की प्राप्ति की सूचना के कारण प्रस्तुति' नामक विविध सत्यांग है।

निर्विघ्न सत्यांग

बीज का एक अर्थ में पर्यावरण हो जाना ही निर्विघ्न है।³ निर्विघ्न सत्यांग के वैद्य अंग हैं—सत्य, विविध, ग्रन्थ, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, समय, कृति, भाषण, उपगोहन, पूर्वावधार, उपास्मार, प्रशस्ति और आनन्द।⁴ चन्द्रकला नाटिका में निम्न सत्यांग वर्णित हैं—

विविध

जहाँ नायक अब तक छिपे हुए अपने कार्य को फिर से खोज करने लगता है, तो उसे विविध निर्विघ्न सत्यांग कहते हैं।⁵ चन्द्रकला में निम्न कथन विविध सत्यांग के उदाहरण हैं—

---
¹ दशरथ, 1.47: सिद्धग्रन्थान्तर भाविदर्शिकाकार्यात्मकासुतुती
साहित्यदर्शन, 6.106: प्रस्तुति तु विभेद्य संहारायप्रदर्शिनी।
नादयद्वर्भच, 1.100: "भाविदर्शिक प्रस्तुति।
² चन्द्रकला, 1.6: "यस्तं भूमिप्रति भूमि पाणिप्रस्तरण।
लक्ष्मी: स्वयमुपागत्व वरसमय प्रदाताप्रति।।
³ दशरथ, 1.48: सत्यिनिर्विघ्नो ग्रन्थनिर्णय:।
⁴ वही, 1.49–50: परिभाषाण्यम् प्रसादानन्दसमयः कृत्य भाषाथः
पूर्वा पूर्वावधारश्रिको प्रशस्तिंच चतुर्दश।
⁵ वही, 1.51: विविध: कार्यार्गम्।
बन्दी—तो भरतुनारिका आगे सुनें। पाण्डवराज ने हमें आपके पास भेजकर निवेदन किया है कि यह कन्या हमारे जामाता चित्रशास्त्री के लिए उपयुक्त है जिसके चरणार्थविदों को समस्त राजाओं के द्वारा अपने मस्तक शुकाकर अनुरंजित किया जाता है और भार्य ने स्वयं यह कार्य आपके महामन्त्री के द्वारा करवा लिया है।

राजा—तो सुँदिति जरा बतलाओं? जिस कन्या को विक्रमाभरण ने आपके पास भेजा था वह कहाँ है?

सुँदिति—उसे मैंने महाराजी के समीप अपनी सम्भावनी बतलाकर रख दिया है कि इसे आप अपनी सत्री बनाकर अपने पास रख लीजिए। ¹ ये कथन चन्द्रकला को पुन: खोजे जाने के कारण विबोध निर्वहण सन्ध्यंग को सृजित करते हैं।

ग्रन्थन

बीज का उपसंहार करना ही ग्रन्थन है।² चन्द्रकला में बन्दीगण का यह कथन कि भार्य ने स्वयं कार्य आपके महामन्त्री के द्वारा करवा लिया है।³ इससे चित्रशास्त्र तथा चन्द्रकला समागम रूप कार्यसिद्धि की सृचना दी गई है, बीज का उपसंहार प्राप्त हुआ है अतः यहाँ ग्रन्थन नामक निर्वहण सन्ध्यंग है।

प्रसाद

पर्युप्पासन अर्थात् प्रसन्न करने का प्रयास ही प्रसाद है।⁴ चन्द्रकला में वसन्तलेखा का यह कथन कि बहिन शान्त हो जाओ, (उठकर चन्द्रकला से आलिंगन करना) शान्त हो जाओ। मेरी क्रूर प्रकृति के कारण ही आप निरपराध पीड़ित की गई हो। दोनों (वसन्तलेखा और चन्द्रकला) मिलकर रोती है।⁵ यहाँ पर महाराजी के

¹ चन्द्रकला, चतुर्धाक, पृ० ७४-७६
² दशरथपक, १.५१: ग्रन्थन तदुपात।

साहित्यदर्पण, ६.११०: उनन्यासुत कार्याणां ग्रन्थनम्।

³ चन्द्रकला, चतुर्धाक, पृ० ७४

⁴ दशरथपक, १.५२ प्रसाद: पर्युप्पासनम।

साहित्यदर्पण, ६.११३ शुक्लादि: प्रसाद: स्यात्।

⁵ चन्द्रकला, चतुर्धाक, पृ० ७८
द्वारा चन्द्रकला को प्रसन्न करने का प्रयास ही 'प्रसाद' नामक निर्वहन सन्दर्भ है।

निर्णय

जब नायकादि अपने द्वारा विचारित या सम्पादित कार्य के विषय में वर्णन करते हैं, उन्हें निर्णय कहते हैं।¹ चन्द्रकला नाटिका में मन्त्री का यह कथन है कि महाराज, अपनी स्वामी के समक्ष अब छिपाने की आवश्यकता नहीं रहीं इसलिए आपको सभी बाते बताता हूं। उसे (चन्द्रकला को) देखकर मैंने तुरुण यह समझ लिया कि गुण, लक्षण एवं स्वरूप में यह कथा असामान्य है, तभी एक दिश्यवाणी भी मुझे सुनाई दी कि जिस महीनति का इस कथा से पृथ्वी पर विवाह होगा उसे लक्ष्मी स्वयं आकर बरदान देगी।² यहाँ पर सुबुधिन्द ने अपने अनुभूत अर्थ का समाप्त किया है जिससे निर्णय नामक निर्वहन सन्दर्भ लक्षित होता है।

समय

नायकादि के दुःख का समाप्त हो जाना समय कहलाता है।³ चन्द्रकला नाटिका में महाराणी का कथन है कि बदियों यह लो अपना पारितोषिक (सन्तोष से सांस लेते हुए आनन्द में भरकर अपनी बहन के जीवित होने की सूचना सुनकर वस्त्रालेखा का दुःख दूर हो जाता है)⁴ अतः यहाँ समय नामक निर्वहन सन्दर्भ है।

---
¹ दाशरथक, 1.51 अनुभूताख्या तु निर्णयः।
  साहित्यसर्व्र, 6.110
  नाद्यशास्त्र, 19.98
² चन्द्रकला, चन्द्ररथक, पृष्ठ 76
³ दाशरथक, 1.52: समयो दुःख निर्माणः।
  नाद्यरस्य, 1.112
  नाद्यशास्त्र, 19.101
⁴ चन्द्रकला, चन्द्ररथक, पृष्ठ 74
कृति

लब्ध अर्थ के रामन करने को कृति कहते हैं। वसन्तलेखा का कथन है कि महाराज, मेरे माता–पिता एवं मेरी सहमति से आप इसका (चन्द्रकला का) पाणिग्रहण करें। इससे यहाँ चित्रस्थ के समागम के लिए चन्द्रकला को महारानी द्वारा उपशमन कर दिया गया है। अतः यहाँ कृति नामक निर्वहन सम्यक है।

भाषण

जहाँ नायकादि को मान आदि की प्राप्ति हो उसका व्यजंक वाक्य भाषण कहलाता है। अथवा साम, दान आदि को भाषण कहते हैं। चन्द्रकला नाटिका में लक्ष्मी–तथापसु। अब मैं तुम्हारा और कौन सा इष्ट कार्य पूरा करहूँ?

राजा–भगवती, इस प्रकार कहने से महारानी प्रसन्न हो गई प्राप्ति प्रया भार्य की प्राप्ति हुई और आप मेरे भवन में उपस्थित हो गई, तो अब इससे ज्यादा इष्ट कार्य क्या होगा?

यहाँ पर राजा को धर्म, अर्थ तथा काम तीनों की प्राप्ति हुई है अतः यहाँ भाषण नामक निर्वहन सम्यक है।

आनन्द

अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होना आनन्द कहलाता है। चन्द्रकला नाटिका में राजा का कथन–ओह! यह महारानी की कृपा हुई है ऐसा कहकर चन्द्रकला का

1. दशरूपक, 1.53: कृतित्वत्त्वार्थशास्त्रादि।
   नाट्यदर्पण, 1.110: कृति: क्षेमम्। साहित्यदर्पण, 6.111

2. चन्द्रकला, चतुर्ध्वरक, पृ. 79

3. दशरूपक, 1.53 मानधातिश्च भाषणम्

4. साहित्यदर्पण, 1.113 सामवादादि भाषणम्
   नाट्यदर्पण, 1.114

5. चन्द्रकला, 4.14

6. दशरूपक, 1.52: आनन्दो बांधिताविदति।
   नाट्यदर्पण, 1.111: आनन्दो बांधिताविदम्।
   साहित्यदर्पण, 6.112
पाणिग्रहण कर स्पर्श का अनुभव करता है। यहाँ पर राजा को चन्द्रकला रूपी अमीष की प्राप्ति होने से आनन्द नामक निर्वहन सन्ध्या है।

काव्यसंहार
नायकादि को वर की प्राप्ति होना काव्य संहार कहलाता है। चन्द्रकला नाटिका में राजा लक्ष्मी की स्पर्शता करते हुए कहता है कि ओ विश्वलभे आपके दर्शन के फल का वर्षन करने की सामर्थ्य किसमें है, फिर भी में एक निभेदन करता हूँ कि संसार में चन्द्रतारों की सत्ता पर्यंत है जननी! तुम मेरे कुल का परित्याग मत करना, मरी आपसे अस्खेतित भवित बनी रहे।

लक्ष्मी-तथाकथा। अब और मैं तुम्हारा कौन-सा मनोस्थ पूर्ण करूँ?

यहाँ राजा को वर्दत दिया हुआ है अतः यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहन सन्ध्या है।

प्रशस्ति
कल्याण की कामना प्रशस्ति कहलाती है। अर्थात् शुभ की आवश्यक प्रशस्ति कहलाती है। चन्द्रकला नाटिका में राजा लक्ष्मी से कहते हैं कि नृपतिगण प्रजा को सत्ताने के समान देखते रहें, गुणग्राही एवं विदेशी पुरुषों की उन्नति होती रहे, पूर्वी धन-धार्मि से पूर्ण हो और सभी की नायनार्य में अस्खेतित भवित बनी रहे। यहाँ पर संसार के कल्याण की कामना की गई है, अतः प्रशस्ति नामक निर्वहन सन्ध्या है।

1. चन्द्रकला, चतुर्थीक, पृ० 79
2. नाट्यदर्पण, 1.115: वर्चछा काव्यसंहारः।
   दशरथंक, 1.54: वर्चछा काव्यसंहारः।
3. चन्द्रकला, चतुर्थीक, पृ० 81
4. नाट्यदर्पण, 1.116: प्रशस्ति: शुभसंसना।
   दशरथंक, 1.54
   साहित्यदर्पण, 6.114: नुमदेशादिशांतिस्तु प्रशस्तिनिभक्ष्यते।
5. चन्द्रकला, 4.15 (भरतवाक्य)
अर्थोपक्षेपक

कथानक के विख्यात को संयमित और सुसमाचरित करने वाली सूचनाएँ
अर्थोपक्षेपक कहलाती है। रूपक दृश्य होते हैं। इनका रंगमंच पर अभिनय किया
जाता है। किसी भी नायक के जीवन की सभी घटनाओं का नाटक में वर्णन नहीं
किया जा सकता तथा नाट्य परम्परा के अनुसार कई घटनाओं को मंच पर
अभिनीत करना वर्जित है; जैसे सम्भोग, रति, पतलायन, सन्धि, मृत्यु और अभिधात
इत्यादि। रूपक रसों से युक्त होते हैं, नीसस वस्तु का वर्णन करना भी वर्जित
है। रूपकों में कथावस्तु के दो भेद सूचिय और दृश्य होते हैं।
इसमें कथावस्तु का
नीससमान तथा इतिवृत्त का रसयुक्त भाग दृश्य कहलाता है। इसी दृश्य
कथावस्तु की सूचना विषमक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य एवं अंकावतार नामक
अर्थोपक्षेपकों के माध्यम से दी जाती है। आचार्य विश्वामित्र तथा दशरूपकार
ने भी इसी पौंच अर्थोपक्षेपकों का स्वीकार किया है। विश्वामित्र ने भी इन्हीं पांचों
अर्थोपक्षेपकों का निम्न वर्णन किया है—

1 नाट्यदर्पण, 168 : अभिनयत्र: प्रधानस्य नेतुरुःश्चो न कुत्रधितः।
वन्यलायन संपर्याज्यो वा फल लिस्याः।।

2 दशरूपक, 156: द्वेषाविभागः करत्व्य सर्वस्यापीवस्तुनः।
सूयदशमवेत् किचिद् दृश्यश्रेयोऽम्बपरम्।।

3 साहित्यदर्पण, 654: अर्थोपक्षेपकः पंच विस्मक प्रवेशकोः।
चूलिकाद्रकादातरो:प्रस्यादःसुङ्गमिनियापि।।

4 दशरूपक, 158: अर्थोपक्षेपकः सूचिय पंचमः प्रतिपाद्येत्।
विस्मकः चूलिकाकादाध्यात्मक प्रदेशः।।
विष्णुमक

यह नाटक के आरम्भ में अथवा अंक के आरम्भ में आता है। इसमें मध्यम श्रेणी के पात्र आकर आगत या विगत घटनाओं की सूचना दे जाते हैं। इससे कथानक आगे बढ़ता है। विष्णुमक के शुद्ध तथा संकीर्ण दो में होते हैं। एक या एक से अधिक मध्यम पात्रों द्वारा प्रभुत्व विष्णुमक शुद्ध तथा मध्यम और अधम श्रेणी के पात्रों द्वारा प्रभुत्व विष्णुमक संकीर्ण कहलाता है। चन्द्रकला में प्रथम अंक में ही आमूँक के बाद विष्णुमक प्रयोग किया गया है। यह विष्णुमक एक मध्यम पात्र, अमात्य सुब्रह्म तथा एक अधम पात्र परिचालिका सुनन्दना के वातावरण पर आधारित होने के कारण संकीर्ण कोटि का है।

प्रथम अंक में प्रस्तावना के बाद, अमात्य विष्णुमक में यह सूचित करता है कि उसने दिव्यवाणी के मध्यम से यह सुना है कि चन्द्रकला का जिससे विवाह होगा— उसे लक्ष्मी स्वयं अभीष्ट वर्दान देगी। अन्नपूर्ण में महाराणी के संख्यान में चन्द्रकला को रखका दिया गया है। सुनन्दना यह सूचित करती है कि महाराज की दृष्टि चन्द्रकला पर पड़ चुकी है और वे उस पर आसक्त भी हो गये हैं लेकिन ही उपाय से शीघ्र ही महाराज का मिलन भी चन्द्रकला से होगा ऐसा भी सूचित करती है। अतः यहाँ पर विष्णूमक प्रभुत्व हुआ है।

चूलिका

रंगमंच पर न आकर नृपत्व से अर्थात् पर्व के पीछे से पात्रों द्वारा दी जाने वाली रचनाएँ चूलिका कहलाती है। चन्द्रकला नाटिका में—साधु! शैलूक साधु। नृपत्व के उपरोक्त कथन से ज्ञात होता है कि सुब्रह्म नामक महामन्त्री आ पहुँचे हैं।

अतः यहाँ पर चूलिका नामक अर्थायोजन नहीं है।

1 दशरथ, 1.59: वृत्तविष्काशानां कथानां निदर्शकः।

कथोपाध्यायो विष्णुमकमेत्र प्रयोजितः।

2 यही, 1.60: एकानेकक्रूः शुद्धः संकृतां नीच मध्यमः।

3 यही, 1.61: अन्तर्जातिकारसंस्थाचूलिकार्थस्य सूचना।

4 चन्द्रकला, प्रथमांक, पृ० 4
प्रवेशक

प्रवेशक विषयक के समान होता है यह भूत तथा भविष्य की घटनाओं का सूचक, नीच पात्रों द्वारा अनुदात उक्तियों के द्वारा प्रयुक्त, दो अंकों के मध्य में रितत तथा रीति अर्थ का सूचक होता है। चन्द्रकला के द्वितीय अंक के आरम्भ में नीच पात्र (सुन्दरना और विद्वृक्ष) आपस में बातचीत करते हैं जिसमें चन्द्रकला के मिलन संकेत देने पर राजा विद्वृक्षदेव का न आना भूतकालीन घटना तथा वस्तुसंबंध द्वारा कुमुदिनी का विवाहमोहन्तव आयोजित किया जाना इस भावी घटना की सूचना के प्राप्त होने के संकेत हैं। तृतीय अंक में दो नीच पात्र विद्वृक्ष और माधविका के आपसी वार्तालाप से राजा तथा चन्द्रकला को सुन्दरना के घर में छिपवा देना, दोनों पात्रों के द्वारा चन्द्रकला को राजा से मिलन कराने की योजना बनाना, माधविका द्वारा वस्तुसंबंध द्वारा घटना बताये जाने से रहस्य का खुलना, परिणामत: चन्द्रकला तथा राजा के भावी मिलन कराने की योजना बनाना, माधविका द्वारा वस्तुसंबंध द्वारा घटना बताये जाने से रहस्य का खुलना, परिणामत: चन्द्रकला तथा राजा के भावी मिलन में सन्देह की अवस्था सुचित होती है। अतः विश्वनाथ ने प्रवेशक अर्थांकप्रकाश का भरपूर प्रयोग किया है।

अंकांकस्य

जहाँ एक अंक की समाप्ति पर उस अंक में प्रयुक्त पात्रों द्वारा किसी छुट्टे से अर्थ की सूचना दी जाये वहाँ अंकांकस्य अर्थांकप्रकाश होता है। चन्द्रकला के प्रथम अंक में रतिकला के द्वारा प्रविष्ट होकर राजा के प्रति-शीघ्र ही आप अब उनके समीप चलने का कष्ट कीजिये, क्योंकि महारानी भी आपको इतने समय तक न देखने पर ऐसा अनुभव करने लगी कि मानों युगान्तर बीत गया हो। उपर्युक्त कथन से अंक के समाप्त हो जाने पर अगले अंक से सम्बन्धित कुमुदिनी परिणाम

1 दशरथक, 1.60: तदनेदानातिक्ष्या नीच पात्रप्रयोक्तिः।
   प्रवेशकास्यनायान्तः माधवांकप्रकाशसूचः।

2 वही, 1.62: अंकांकस्य अर्थांकप्रकाश सिद्धांतसारसूचकातः।

3 चन्द्रकला, प्रथमांक, पृष्ट 21–22
महोत्सव की सूचना दी गई हैं। छूटे हुए अर्थ की सूचना देने से यहाँ अंकास्य नामक अर्थोपक्षपक है।

अंकावतार

जहाँ एक अंक का अन्त हो जाने पर अगले अंक का अभिन्न रूप से अवतरण हो जाये यहाँ अंकावतार होता है। चंद्रकला के तृतीय अंक के अन्त में राजा दुःखी होकर जोर से साँस लेते हुए कि मेरे इस प्रकार के दूसरी प्रेयसी के साथ मिलन को अपने समुख देखने वाली महारानी के बड़े हुए सान को रोकना कैसे सम्भव हो सकता है। मेरे कारण से मित्र के साथ प्रयत्न को भी बांधकर ले जाया गया। अब ऐसी अवस्था में जब विनाश स्वयं अधानक उपस्थित हो तो मैं क्या करूँ (ऐसा विचार करके) अब यहाँ ठहरने से कोई लाभ नहीं, अतः नगर जाकर ही कोई उपाय सोचूँगा। (सभी का प्रस्थान) यहाँ तृतीय अंक समाप्त हो जाता है और तुरंत ही चतुर्थक का आरम्भ खिन्न राजा के प्रवेश से हो जाता है। अतः नये अंक के आगमन हो जाने से विश्वास के यहाँ अंकावतार नामक अर्थोपक्षपक का प्रयोग किया है।

1 दशरथपक, 1.62: अंकावतारस्त्वकान्ते पातोइस्याबिमागतः।